आधुनिक जैन-कवि

• ● •

रमारानी जैन

सम्पादिका

५१

वीर सेवा मन्दिर
दिल्ली

★

क्रम संख्या
काल नं०
खण्ड

३१३६

आधुनिक जैन-कवि

हिन्दी-गौरव ग्रन्थ-माला—न० १

आधुनिक

जैन-कवि

•

रमारानी जैन
सम्पादिका

•

जैन ज्ञानपीठ, काशी
प्रकाशक

पहला संस्करण—सन् १९४४

मूल्य दो रुपया

मुद्रक
जे० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

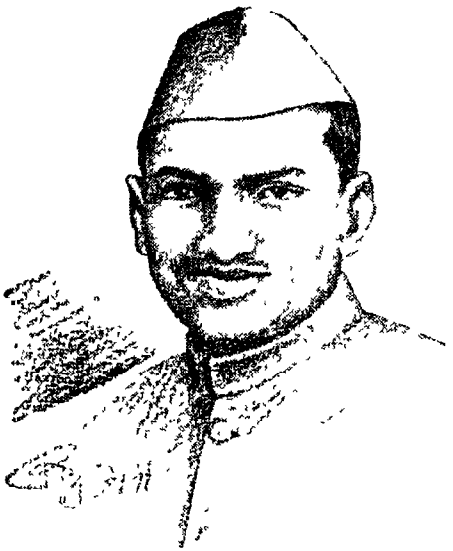

उलाहना

"आप सचमुच बड़े ही वैसे है। उस रोज कानपुर के कवि-सम्मेलन में, भरी सभा मे, आप ने उठ कर कह दिया—'अपनी समाज के सुन्दर कवियो की कविताये मुझे इतनी प्रिय है कि इनके संग्रह और सम्पादन का भार मै अपने एक बहुत ही प्यारे व्यक्ति—अपनी रमा—के सुपुर्द करता हूँ ....।'

* * *

भला, सब क्या कहते होगे 'मै तो लज्जा से लाल हो गई'

* * *

आज इस पुस्तक को अञ्चल मे छिपाये, सकुचाती हुई, जब आपके सामने आने का साहस करती हूँ तो दुविधा मे पड़ जाती हूँ। यदि आपको यह पसन्द न आई—तो ?

* * *

पर, नही, मै क्यो सङ्कोच करूँ ?
आपके ही 'सुन्दर' कवि है,
आपकी ही 'प्रिय' कविताये
है और है आपकी ही
'अपनी'—रमा।"

* * *

विषय-सूची

युग-प्रवर्तक

	पृष्ठ
१ श्री जुगल किशोर, मुख्तार	३
मेरीभावना	५
अज सम्बोधन	८
२ श्री नाथूराम, 'प्रेमी'	१०
सद्धर्म-सन्देश	१२
मेरे पिता की परलोक यात्रा पर	१४
३ श्री भगवन्त गणपति, गोयलीय	१५
सिद्धवर कूट	१६
नीच और अछूत	१८
४ श्री प० मूलचन्द्र जी, 'वत्सल'	२०
वीणा वाली	२१
मेरा ससार	२२
अमरत्व	२३
प्यार	२३
५ श्री गुणभद्र, 'अगास'	२४
सीता की अग्नि परीक्षा	२५
भिखारी का स्वप्न	२६

युगानुगामी

	पृष्ठ
६ कविरत्न पं० चैनदास जी, 'न्यायतीर्थ'	३१
सत्ता का अहंकार	३२
जीवन-पट	३३
अन्तिम वर	३४
७ श्री पंडित दरबारी लाल जी, 'सत्य भक्त'	३५
उलहना	३६
कब्र के फूल	३८
झरना	३९
८ पंडित नाथूराम जी, डोगरीय	४०
मानव-मन	४०
९ श्री सूर्यभानु डॉगी, 'भास्कर'	४२
विनय	४२
ममार	४३
१० श्री दद्दूलाल जी	४४
मन की बातें	४४
पथिक	४६
११ श्री शोभाचन्द, भारिल्ल	४७
अन्यत्व	४७
आज और कल	४८
अभिलाषा	५०
१२ श्री रामस्वरूप, 'भारतीय'	५१
समाधान	५१
धर्म-तत्त्व	५२

पृष्ठ

१३ पडित अयोध्याप्रसाद, गोयलीय ५३
जवानी का जोश ५४
१४ श्री प० अजित प्रसाद जी ५५
धर्म का मर्म ५६
यह बहार ५७
१५ श्री कामता प्रसाद जैन ५८
वीर प्रोत्साहन ५९
१६ पडित परमेष्ठी दास जी, 'न्यायतीर्थ' ६०
महावीर-सन्देश ६१

प्रगति प्रेरक

१७ श्री कल्याणकुमार, 'शशि' ६५
रण-चण्डी ६६
विश्रुत-जीवन ६७
नील रात्रि ६७
गीत ६८
१८ श्री भगवत् स्वरूप, 'भगवत्' ७१
आत्म-प्रश्न ७२
सुख शान्ति चाहता है मानव ७३
मुझे न कविता लिखना आता ७४
एक प्रश्न ७५
१९ श्री लक्ष्मीचन्द्र एम० ए० ७६
कोई क्या जाने कोई क्या समझे ? ७७
'कुहू-कुहू' फिर कोयल बोली ! ७८

पृष्ठ

मै पतझर की सूखी डाली ! ७९

सजनि ! आँसू लोगी या हास ? ८०

२० श्री शान्ति स्वरूप, 'कुसुम' ८१

कलिका के प्रति ८२

कुछ भी न समझ पाता हूँ मै, जग की या मेरी गलती है ! ८३

२१ श्री कपूर चन्द, 'इन्दु' ८५

कवि-विमर्श ८५

२२ श्री लक्ष्मणप्रसाद, 'प्रशान्त' ८७

फूल ८७

कवि से ८८

अब कैसे निज गीत सुनाऊँ ! ८९

२३ श्री राजेन्द्र कुमार, 'कुमरेश' ९०

जागृति-गीत ९१

परिवर्तन का दास ९१

बहिन से ९२

पथी ९३

२४ श्री अमृत लाल, 'चचल' ९४

अमर पिपासा ९४

२५ श्री खूबचन्द्र, 'पुष्कल' ९६

भग्न-मन्दिर ९६

कवि कैसे कविता करते हैं ? ९७

जीवन दीपक ९९

२६ श्री पन्नालाल, 'वसन्त' १००

जागो जागो हे युगप्रधान ! १००

त्रिपुरी की झाँकी १०२

पृष्ठ

२७ श्री वीरेन्द्रकुमार एम० ए० १०४
वीर-वन्दना १०४
२८ श्री रवि चन्द, 'शशि' १०६
भारत माँ से १०६
२९ श्री 'रत्नेन्दु', फरिहा १०८
प्रकृति गीत १०८
मनन ११०
३० श्री अक्षय कुमार, गगवाल १११
रे मन ! १११
उद्बोधन ११२
हलचल ११३
३१ श्री चम्पालाल सिघई, 'पुरदर' ११४
दीप-निर्वाण ११४
मानी चेदि ११५

प्रगति-प्रवाह

३२ श्री मुनि अमृत चन्द्र, 'सुधा' ११९
अन्तर ११९
बढेजा १२०
जीवन १२१
३३ श्री घासीराम, 'चन्द्र' १२२
फूल से १२२
३४ पडित राज कुमार, 'साहित्याचार्य' १२४
आह्वान् १२४

पृष्ठ

३५ श्री ताराचन्द, 'मकरन्द'	१२६
जीवन-घड़ियाँ	१२६
ओस	१२७
पुनर्मिलन	१२८
३६ श्री सुमेरचन्द्र, 'कौशल'	१२९
जीवन पहेली	१२९
आत्म वेदन	१३०
३७ श्री बाल चन्द्र, 'विशारद'	१३१
वन के फूल से	१३१
लेखनी से	१३२
प्रभात	१३३
स्वतन्त्रता !	१३४
३८ श्री सुमेरुचन्द्र शास्त्री, 'मेरु'	१३५
शारदा-स्तुति	१३५
सुवर्ण उपालम्भ	१३५
महाकवि तुलसी	१३६
परिचय	१३७
कवि-गर्वोक्ति	१३८
३९ श्री गुलाबचन्द्र, ढाना	१३९
चन्द्र के प्रति	१३९
सफल जीवन	१४०
४० डॉ० शकरलाल, इन्दौर	१४१
आजादी	१४१
मानव के प्रति	१४२

पृष्ठ

४१ बा० श्रीचन्द, एम० ए० १४३
गीत १४३
आत्म वेदना १४४
दोहावली १४५

ऊर्म्मियाँ

४२ श्री लज्जावती, 'विशारद' १४९
आकुल अन्तर १४९
सम्बोधन ! १५०
४३ श्री कमलादेवी जैन, 'राष्ट्रभाषा कोविद' १५१
हम हैं हरी भरी फुलवारी १५१
महक उठा फूलों से उपवन ! १५२
विरहिणी १५३
४४ श्री प्रेमलता, 'कौमुदी' १५४
बापू से १५४
पनिहारी १५५
४५ श्री कमला देवी जैन १५६
रोटी १५६
निराशा के स्वर में १५८
४६ श्री सुन्दर देवी, कटनी १५९
यह दुखी संसार १५९
जीवन का ज्वार १६०
४७ श्री मणिप्रभा देवी, रामपुर १६१
सोने का संसार १६१
४८ श्री कुन्थकुमारी, बी० ए० (ऑनर्स) बी० टी० १६३
मानस में कौन छिपा जाता १६३
भ्रमर से १६४

पृष्ठ

४९ श्री रूपवती देवी, 'किरण' १६५
यह ससार बदल जावेगा। १६५
उस पार १६६
५० श्री चन्द्रप्रभा देवी, इन्दौर १६८
रण भेरी! १६८
५१ श्री छन्नो देवी, लहरपुर १६९
जागरण १६९
५२ श्री कुसुमकुमारी, 'कुसुम' १७०
नाविक से १७०
५३ श्री मैनावती जैन १७१
चरणो मे! १७१

गीति-हिलोर

५४ श्री गेंदालाल सिंघई, 'पुष्प' 'साहित्यभूषण' १७५
कभी कभी मै गा लेता हूं १७५
बलिदान १७६
जीवन सगीत १७७
५५ श्री फूलचन्द्र, 'मधुर' सागर १७८
टूटे हुए तारे की कहानी—तारे की जुबानी १७८
गीत १७९
मैने वैभव त्याग दिया १८०
आज विवश है मेरा मन भी १८१
५६ श्री 'रतन' जैन १८२
मुझसे कहती मेरी छाया १८२
मेरे अन्तर तम के घट पर १८३
पूछ रहे क्या मेरा परिचय १८३

पृष्ठ

बतलाओ तो हम भी जाने १८४

५७ श्री फूलचन्द्र, 'पुष्पेन्दु' १८५

स्मृति-अश्रु १८५

अभिलाषा १८६

देव द्वार पर १८७

व्यथा १८८

५८ श्री गुलजारी लाल, 'कपिल' १८९

विश्व का अवसाद हूँ मैं १८९

रुदन या गान १९०

५९ श्री हीरा लाल जैन, 'हीरक' १९१

प्राण ! क्यो म्रियमाण ऐसे ! १९१

देखा है १९२

सोकर

६० श्री ईश्वर चन्द्र, बी० ए०, एल-एल० बी० १९५

अर्चना १९५

६१ श्री अनूपचन्द्र, जयपुर १९६

मेरा उर आलोकित कर दो १९६

६२ श्री 'तन्मय' १९७

मै एकाकी पथ-भ्रष्ट हुआ १९७

६३ श्री साहित्यरत्न प० चादमल, 'शशि' जयपुर १९९

प्रण, दे प्राण निभायेगे १९९

६४ श्री लक्ष्मीचन्द्र, 'सरोज' २००

निशा भर दीपक जिये जा २००

६५ श्री सागरचन्द्र, 'मोला' २०१

जग-दर्शन २०१

पृष्ठ

६६ **श्री बाबूलाल, सागर** २०२
थिक के प्रति २०२
६७ **श्री कपूरचन्द नरपत्येला, 'कज'** २०४
मेरी बात २०४
६८ **श्री केशरीमल आचार्य, लश्कर** २०५
तेजो निधान गाँधी महान् ! २०५
६९ **श्री कौशलाधीश जैन, 'कौशलेश'** २०७
भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र २०७
ऋतुराज २०७
७० **श्री मुनि विद्या विजय** २०८
दीप-माला २०८
७१ **श्री चन्द्रशेखर शास्त्री, 'आचार्य'** २०९
भक्ति भावना २०९
७२ **श्री सूरज भानु, 'प्रेम'** २१०
किनारा हो गया २१०
विचार लो ? २१०
७३ **श्री गोविन्द दास, काठिया** २११
वसन्त आगमन २११
७४ **श्री युगल किशोर, 'युगल'** २१२
मानव २१२
७५ **श्री अभय कुमार, 'कुमार'** २१३
जागृति-गीत २१३
७६ **श्री निहालचन्द्र, 'अभय'** २१४
ओ गाने वाले गाये जा २१४

प्रवेश

कवियों का जातीय आधार पर वर्गी-करण करना शायद जाति-विशेष के लिए गौरव की बात हो, कवि के लिए नहीं। जो कवि हैं, चाहे जहाँ का भी हो, उसकी तो जाति और समाज एक ही है--'मानव-समाज'। कवि की मुस्कान में मानवता का वसन्त खिलता है और उसके आँसुओं में विश्व का पतझर झरझराता है। यह सारी मानव-समाज हृदय के नाते एक ही है। अपनी माता के लिए जो श्रद्धा, पुत्र के लिए जो ममता, बिछुड़ी हुई प्रेयसी के लिए जो विकलता और अपमान के लिए जो क्षोभ एक भारतीय किसान के हृदय में उमड़ता है, वही लन्दन के सम्राट् के हृदय में और वही उत्तरी ध्रुव के अन्तिम छोर पर बसने वाले 'एस्कीमो' के हृदय में भी। इस श्रद्धा, ममता, विकलता और क्षोभ आदि की अनुभूतियों को कवि शब्दों में, चित्रकार तूलिका से, गायक स्वरों से, शिल्पी छैनी से और कलावृत्त अपने अङ्ग-प्रत्यङ्ग की क्रिया-प्रक्रिया द्वारा साकार रूप देता है।

इस प्रकार साहित्य, सङ्गीत और कला के उद्गम तथा उद्देश्य की एकता के बीच में मैं जो कवियों को आधुनिकता की सीमा में घेर कर 'जैनत्व' के वर्ग में विभक्त कर रहा हूँ उसका उद्देश्य क्या है? केवल यही कि इस पुस्तक को लिखते समय सारे साहित्य की जिम्मेदारी अपने सिर पर लादने से बच जाऊँ और अपने परिश्रम का क्षेत्र छोटा कर लूँ। दूसरे, जब कवि मानव-समाज का प्रतिनिधि है, तो उसे ढूँढ कर मानव-समाज के सामने लाने का काम भी तो किसी को करना ही चाहिए।

मै अपनी जाति और समाज के सम्पर्क के द्वारा जिन कवियो को जान सकी हूँ जिन तक पहुचना दुर्लभ है, मानवता के उन प्रतिनिधियो को विशाल साहित्य-ससार के सामने ला रही हूँ। वह अपनी बात अब स्वय ही आपसे कह देंगे।

इस पुस्तक के लिए सामग्री एकत्रित करने मे यद्यपि कई महीने लग गए, फिर भी अनेक ऐसे कवि रह गए है जिनके साथ पत्र द्वारा सम्पर्क नही हो सका अथवा उचित सामग्री प्राप्त नही हुई। सङ्कलन का काम अपनी 'रुचि' के आधार पर किया गया है इसलिए उससे सब किसी को सन्तोष होगा ऐसी कल्पना करने के लिए कोई गुजायश नही है। जैन-कवियो की कविताओ का एक भी ऐसा सग्रह और सङ्कलन मुझे नही प्राप्त हो सका जिससे वर्गीकरण के लिए कुछ दिशा-निर्देश मिलता। शायद, ऐसी पुस्तक कोई प्रकाशित ही नही हुई।

मैने इस पुस्तक को निम्न प्रधान शीर्षको मे विभक्त किया है—

१ युग-प्रवर्त्तक
२ युगानुगामी
३ प्रगति-प्रेरक
४ प्रगति-प्रवाह
५ ऊर्म्मियाँ
६ गीति हिलोर, और
७ सीकर

पहले तीन शीर्षक कवि-प्रधान है, और शेष चार मे काव्य-धारा प्रधान है। फिर भी, कवियो की प्रधानता, विषयो का सङ्कलन, सामग्री की उपलब्धि-अनुपलब्धि और वर्त्तमान परिस्थिति मे पुस्तक के कलेवर को कम करने की आवश्यकता आदि सब बातो का ख्याल रखने के कारण बीच-बीच मे पुस्तक की योजना मे छोटे-मोटे परिवर्त्तन करने पडे है।

'युग प्रवर्त्तक' कवियों के सम्बन्धमे इतना ही कहना है कि नये जागरण के और सुधार के युग मे जिस विचार-स्रोत को इन महान आत्माओं ने समाज की मरुभूमि की ओर उन्मुख किया, उसने समाज को नया जीवन और साहित्य को नया स्वर दिया। वह वर्त्तमान युग के महारथी है, प्रकाश-स्तम्भ है।

'युगानुगामी' कवियो मे हमारी समाज के अनेक मान्य विद्वान्, सपादक और विचारक है, जो हमारी प्राचीन सस्कृति के सरक्षक है, किन्तु साथ मे युगारम्भ की नई प्रेरणा को साहित्य और समाज सुधार के क्षेत्र मे परीक्षण के द्वारा आगे ले जाने वाले है---इस समुदाय के कवियो की कविता की यह विशेषता है कि वह प्रधानत धर्ममूलक, दार्शनिक या सुधारवादी है।

कविता की दृष्टि से तीसरा परिच्छेद, 'प्रगति-प्रवर्तक', विशेष महत्त्व का है। इसमे समाज के वह चुने हुए नवयुवक कवि है जो युग-प्रवर्त्तक' से आगे बढ गये है और जिन्होने हिन्दी कविता की प्रचलित शैलियों को अपनाकर कविता को भाव, भाषा और विषय की दृष्टि से प्रगति की श्रेणी मे ले आए है। इनमे से अनेक कवियो को हमारे साहित्य मे प्रगति के महारथियों के रूप मे स्मरण किया जायेगा।

अब जो प्रगति की धारा बह रही है, उस प्रवाह म नये नये कवि अपनी अपनी प्रतिभा, रुचि और क्षमता के अनुसार अवगाहन कर रहे है। इस 'प्रगति-प्रवाह' मे हमारी समाज की सुकोमल, कवियित्रियो की सरस भाव-'ऊर्मियाँ' तरगित हो रही है, तरुण-कवियो की 'गीति-हिलोर' नृत्य कर रही है, और अनेक छोटे-बडे कवियो के प्रयत्न-'सीकर' उल्लास से उछल रहे है।

हमारे इन कवि-कवियित्रियो का आज के प्रगतिशील हिन्दी साहित्य मे क्या स्थान है? यह प्रश्न करने और उसका उत्तर खोजने का समय अभी नही आया। यदि यह पुस्तक हमारे साहित्यकों की विचार धारा को इस

प्रश्न की ओर उन्मुख कर सकूँ, और यदि हमारे कवियो म इस प्रश्न को समाधान करने की इच्छा जागृत हो सकी, तो मैं अपने इस प्रयत्न की सफलता पर उचित गर्व अनुभव करूँगी।

मैं चाहती थी, इस पुस्तक को अपने कवि-कलाकारों के चित्रों से सजाती और इसे प्रत्येक प्रकार से सुन्दरतम बनाती। पर मुझे बहुत से कवियो के चित्र प्राप्त न हो सके और जिनके चित्र आये उनमे से अधिकाश ब्लौक बनने के योग्य न थे। यदि इस पुस्तक का दूसरा सस्करण प्रकाशित हुआ तो इन कमियो को दूर करने का अवश्य प्रयत्न करूँगी।

मुझे खेद है कि मैं अनेक कृपालु कवि-कवियित्रियो की रचनाये जो इस सग्रह के लिए प्राप्त हुई थीं, सम्मिलित नहीं कर पाई। मैं उनसे क्षमा- प्रार्थी हूं। मेरा विश्वास है कि अगले सस्करण तक उनकी नई रचनाये और भी अधिक सुन्दर होंगी और मुझे भी सम्पादन की योग्यता बढ सकेगी।

इस पुस्तक मे जिन साहित्यिकों की रचनाये जा रही है, उनकी कृपा और सहयोग के लिए मैं हृदय से आभारी हूं। भाई कल्याणकुमार 'शशि' ने कई कवियो के पास स्वय पत्र लिख कर उनसे कविताये भिजवाई, जिसके लिए मैं आभारी हूं। पडित अयोध्याप्रसाद जी गोयलीय ने उचित सुझाव दिये हैं और 'इलाहाबाद लॉ जनरल प्रेस' के सुयोग्य मैनेजर, श्री कृष्णप्रसाद दर ने अत्यधिक परिश्रम कर के एक सप्ताह मे ही इतनी बडी पुस्तक छाप दी है। अत वह धन्यवाद के पात्र हैं।

अब, रह गये श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन! उनके विषय मे जो कहना चाहती हूं, उसके उपयुक्त शब्द नहीं सूझ रहे हैं। वह अपने को बडा साहित्यिक समझते हैं। अगर है, तो स्वय ही समझ लेंगे कि मैंने क्या कहा और क्या नहीं कहा! बस!

डालमिया नगर,
अप्रैल १९४४

रमारानी

युग-प्रवर्त्तक

श्री जुगल किशोर', मुख़्तार

श्री पंडित जुगल किशोर जी मुख़्तार ने गत-वर्ष जब अपने महान् आदर्श-मूलक जीवन के छयासठवें हेमन्त में प्रवेश किया तो सारी जैन समाज और साहित्यक जगत ने एक सम्मान-समारोह का आयोजन करके उनकी सेवा में हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पण की। इस साहित्य तपस्वी के ३६ वर्ष की जीवन साधना ने समाज की वर्त्तमान पीढी और भारतवर्ष की आगे आने वाली सन्ततियो के पथ-प्रदर्शन के लिए एक ऐसे प्रकाश-स्तम्भ का प्रतिष्ठापन कर दिया है जो अक्षय और अटल होकर रहेगा।

आपकी साहित्यिक सेवाओ, शोध और खोज की अनवरत कार्य्य-धाराओ तथा पुरातत्त्व और इतिहास के विशाल ज्ञान को देश-विदेश के विद्वानो ने प्रामाणिकता की कसौटी पर कस कर उसे खरा सोना बताया है। किन्तु यह विद्वानो और मनीषियो की दुनियाँ की बातें है। समाज के जन-समूह के जीवन से उनका क्या सबध है, यह समझने के लिए जनता को अपने ज्ञान का धरातल ऊँचा उठाना होगा। सौभाग्य से पडित जुगलकिशोर जी के जीवन-कार्य की यह केवल एक दिशा है।

समाज के सार्वजनिक जीवन की दृष्टि से जिस बात का सब से अधिक महत्त्व है, वह तो यही है कि पडित जुगलकिशोर जी एक प्रमुख युग-प्रवर्त्तक है—धार्मिक क्षेत्र मे, सामाजिक क्षेत्र में और साहित्यिक क्षेत्र में। उन्होने धार्मिक श्रद्धा को पाखड-पिशाचिनी के पजे से छुडाया, समाज के प्राणो मे व्याप्त रूढि के विष को निर्भीक आलोचना के नश्तर से निष्क्रिय कर देने की सफल चेष्टा की और साहित्य की सूखी फुलवाडी में नये भावो के सुरभित सुमन खिलाये।

आपके कवि-जीवन की एक झाँकी सम्मान-समिति द्वारा प्रकाशित पत्रिका ने इस प्रकार दिखाई है—

"अपने यौवन के आरभ मे उन्होने कवि के रूप में अपने साहित्यिक

कार्य का आरंभ किया था और 'मेरी भावना' नामक एक छोटी सी पुस्तिका लिखी थी। योरोप की राजनैतिक पार्टियो के चुनाव 'मैनिफैस्टो' (Manifesto) की तरह यह उनकी जीवन-साधना का 'मैनिफ़ैस्टो' (घोषणापत्र) थी। इसकी बीसियो लाख प्रतियाँ अभीतक छप चुकी है। भारतवर्ष की अंग्रेजी, सस्कृत, उर्दू, गुजराती, मराठी, कनडी, आदि अनेक भाषाओ में इसका अनुवाद हो चुका है। अनेक प्रान्तीय म्युनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की सस्थाओ ने इसे राष्ट्रीय गानादि के रूप में स्वीकार किया है और वहाँ नित्य प्रति इसकी प्रार्थना होती है। हिन्दी में इस पुस्तक के प्रकाशन, वितरण और बिक्री का शायद अपना ही रिकार्ड है।

अनेक सस्थाओ के सार्वजनिक उत्सवो का आरभ इसी प्रार्थना से होता है। न जाने कितने अशान्त हृदयो को इसने शान्ति प्रदान की है और कितनो को सन्मार्ग पर लगाया है। उनकी कुछ कविताएँ 'वीर-पुष्पाञ्जलि' के नाम से २३ वर्ष पहिले प्रकाशित हुई थी। उसके बाद भी 'महावीर-सन्देश' जैसी कितनी ही सुन्दर भावपूर्ण कविताएँ लिखी तथा प्रकट की गई है।"

संसार के साहित्य के लिए और मानव जगत के लिए 'मेरी भावना' एक जैन-कवि की इस युग की बहुत बड़ी देन है 'आधुनिक जैन-कवि' का प्रारम्भ इसी कविता—इसी राष्ट्रीय प्रार्थना—से हो रहा है।

काव्य-जगत और कार्य-जगत दोनो मे श्री प० जुगल किशोर जी मुख्तार सच्चे 'युगवीर' सिद्ध हुए है।

मेरी भावना

जिसने रागद्वेष-कामादिक जीते, सब जग जान लिया,
सब जीवो को मोक्षमार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया।

बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर,
ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो,
भक्ति-भाव से प्रेरित हो यह,
चित्त उसीमे लीन रहो।।

विषयो की आशा नहि जिनके, साम्य-भाव धन रखते है,
निज-पर के हित-साधन मे जो निश-दिन तत्पर रहते है,

स्वार्थ-त्याग की कठिन तपस्या
बिना खेद जो करते है,
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के
दुखसमूह को हरते है।।

रहे सदा सत्सग उन्ही का, ध्यान उन्ही का नित्य रहे,
उनही जैसी चर्या मे यह चित्त सदा अनुरक्त रहे।

नही सताऊ किसी जीव को,
झूठ कभी नहि कहा करूँ,
परधन-बनिता पर न लुभाऊँ,
सन्तोषामृत पिया करूँ।।

अहकार का भाव न रक्खूँ, नही किसी पर क्रोध करू,
देख दूसरो की बढती को कभी न ईर्षा-भाव धरूँ।

रहे भावना ऐसी मेरी
सरल-सत्य-व्यवहार करूँ,
बने जहाँ तक इस जीवन मे,
औरो का उपकार करूँ ॥

मैत्री-भाव जगत मे मेरा सब जीवो से नित्य रहे,
दीन-दुखी जीवो पर मेरे उर से करुणा-स्रोत बहे।

दुर्जन-क्रूर-कुमार्गरतो पर
क्षोभ नही मुझको आवे,
साम्यभाव रक्खूँ मै उन पर,
ऐसी परिणति हो जावे ॥

गुणी जनो को देख, हृदय मे मेरे प्रेम उमड आवे,
बने जहाँ तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे।

होऊँ नही कृतघ्न कभी मै,
द्रोह न मेरे उर आवे,
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित,
दृष्टि न दोषो पर जावे ॥

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे,
लाखो वर्षो तक जीऊँ या मृत्यु आज ही आ जावे।

अथवा कोई कैसा ही भय
या लालच देने आवे,
तो भी न्याय-मार्ग से मेरा
कभी न पद डिगने पावे ॥

होकर सुख मे मग्न न फूले, दुख मे कभी न घबरावें,
पर्वत-नदी-स्मशान-भयानक, अटवी से नहिं भय खावें।

रहे अडोल अकप निरतर
यह मन, दृढतर बन जावे,
इष्ट-वियोग-अनिष्टयोग मे
सहनशीलता दिखलावे ॥

सुखी रहे सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे,
वैर-पाप-अभिमान छोड जग, नित्य नये मगल गावे।

घर-घर चर्चा रहे धर्म की,
दुष्कृत दुष्कर हो जावे,
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना,
मनुज-जन्मफल सब पावे ॥

ईति-भीति व्यापे नहिं जग मे वृष्टि समय पर हुआ करे,
धर्मनिष्ठ हो कर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे।

रोग-मरी-दुर्भिक्ष न फैले,
प्रजा शान्ति से जिया करे,
परम अहिंसा-धर्म जगत मे
फैल सर्वहित किया करे ॥

फैले प्रेम परस्पर जग मे, मोह दूर पर रहा करे,
अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द नहिं कोई मुख से कहा करे।

बनकर सब "युग-वीर" हृदय से,
देशोन्नतिरत रहा करे।
वस्तु-स्वरूप विचार खुशी से,
सब दुख-सकट सहा करे ॥

अज सम्बोधन

(वध्य भूमि की ओर ले जायेजाने वाले बकरे से !)

हे अज, क्यो विष्ण-मुख हो तुम, किस चिन्ता ने घेरा है ?
पैर न उठता देख तुम्हारा, खिन्न चित्त यह मेरा है।

देखो, पिछली टाँग पकड कर,
तुमको बधक उठाता है ;
और ज़ोर से चलने को फिर,
धक्का देता जाता है।

कर देता है उलटा तुमको, दो पैरो से खडा कभी,
दाँत पीसकर ऐठ रहा है, कान तुम्हारे कभी-कभी।

कभी तुम्हारे क्षीण-कुक्षि मे,
मुक्के खूब जमाता है,
अण्ड-कोष को खीच नीच यह,
फिर-फिर तुम्हे चलाता है।

सह कर भी यह घोर यातना, तुम नहि कदम बढाते हो,
कभी दुबकते, पीछे हटते, और ठहरते जाते हो !

मानो सम्मुख खडा हुआ है,
सिंह तुम्हारे बलधारी,
आर्तनाद से पूर्ण तुम्हारी,
'मे · मे ' है इस दम सारी।

शायद तुमने समझ लिया है, अब हम मारे जावेंगे,
इस दुर्बल औ दीन दशा मे भी नहिं रहने पावेंगे।

छाया जिससे शोक हृदय मे,
इस जग से उठ जाने का,
इसी लिये है यत्न तुम्हारा,
यह सब प्राण बचाने का!!

पर ऐसे क्या बच सकते हो, सोचो तो, है ध्यान कहाँ?
तुम हो निबल, सबल यह घातक, निष्ठुर, करुणा-हीन महा।

स्वार्थ-साधुता फैल रही है,
न्याय तुम्हारे लिये नही,
रक्षक भक्षक हुए, कहो फिर,
कौन सुने फरियाद कही।

इससे बेहतर खुशी-खुशी तुम, बध्य-भूमि को जा करके,
बधक-छुरी के नीचे रख दो, निज सिर स्वय झुका करके।

'आह' भरो उस दम यह कह कर,
"हो कोई अवतार नया,
महावीर के सदृश जगत मे,
फैलावे सर्वत्र दया॥"

श्री नाथूराम, 'प्रेमी'

सभव है कुछ लोग श्री 'नाथूराम' जी को न जानते हो, पर 'प्रेमी' जी को सारा हिन्दी-ससार जानता है। 'प्रेमी' उपनाम इस बात का द्योतक है कि प्रारभ में आप कवि के रूप में ही साहित्य की रगभूमि में उतरे थे। आज कवि 'प्रेमी' के जीवन-दीप की स्निग्ध आभा को उन पंडित नाथू राम जी की प्रखर प्रतिभा के सूर्य ने मन्द कर दिया है जो देश के प्रसिद्ध लेखक है, सपादक है, इतिहासज्ञ है, समालोचक है, विचारक है, और हिन्दी की सबसे बडी प्रकाशन-सस्था 'हिन्दी-ग्रथ-रत्नाकर कार्यालय' तथा जैन-साहित्य की प्रमुख प्रकाशन सस्था 'जैन-ग्रथ-रनाकर कार्य्यालय' के सम्पन्न सचालक है। स्वय 'प्रेमी' जी ही उस कवि को 'अतीत का गीत' मानने लगे है। वह अपने एक पत्र में लिखते है --

"मै कवि तो नहीं हूँ। लगभग ४०-४२ वर्ष पहिले कवि बनने की चेष्टा की थी, और तब बहुत वर्षों तक कवि कहलाया भी, परन्तु कवि बनते नही है, वे स्वाभाविक होते है। प्रयत्न करके कवि नही बना जाता, पद्य लेखक बना जाता है। सो मै पद्य-निर्माता बनकर ही रह गया और पीछे धीरे धीरे पद्य लिखना भी छोड बैठा।

अपनी रचनाओ को मैने सग्रह करके नहीं रक्खा। सग्रह योग्य वे थी भी नहीं। ८-१० वर्ष पहिले सुहृद्वर प० जुगलकिशोर जी मुख्तार ने 'मेरी भावना' साइज़ में 'स्तुति-प्रार्थना' नाम की पुस्तिका छपाई थी। उसमें मेरी ४-६ रचनाएँ है। पर मेरे पास उसकी भी कोई कापी नही है।"

'प्रेमी' जी की महानता ने उन्हें नम्र बनाया है। वह अपनी कविता के विषय में कुछ भी कहें, इसमें सन्देह नहीं कि ४० वर्ष पूर्व उनकी कविताओ ने समाज में नये युग का आह्वान किया, कवियो को नई दिशा दिखाई, कविता को नई शैली दी और कल्पना को नये पख प्रदान किये। उन्होने साहित्य का भी निर्माण किया है, और साहित्यिको का भी!

उनकी एक कविता, 'मेरे पिता की परलोक यात्रा पर' का अंश यहाँ दिया जा रहा है। इस रचना के विषय में 'प्रेमी' जी ने लिखा है:—

"यह मैंने सन् १९०६ में अपने पिता की मृत्यु के समय लिखी थी। उतनी अच्छी तो नहीं है, परन्तु मैंने रोते-रोते लिखी थी, इसलिए उसमें मेरी अन्तर्वेदना बहुत कुछ व्यक्त हुई है।"

× × ×

जो भावुक कवि-हृदय अपने पिता की मृत्यु पर अप्रतिहत वेग से फूट पडा था, और जिसके आँसुओ के निर्झर में कविता प्रवाहित हुई थी, वह आज जीवन की सन्ध्या में अपने जवान एकलौते बेटे को खोकर क्या अनुभव कर रहा है—इसको सोचते ही कल्पना काँप उठती है, बुद्धि कुंठित हो जाती है!

साहित्य-जगत् की समवेदना के आँसू, 'प्रेमी' जी के दुख को कुछ अश में बँटा सकें—यही कामना है।

सद्धर्म-सन्देश

मदाकिनी दया की, जिसने यहाँ बहाई,
हिंसा, कठोरता की, कीचड को धो बहाई,
समता-सुमित्रता का, ऐसा अमृत पिलाया,
द्वेषादि रोग भागे, मद का पता न पाया ॥

उस ही महान् प्रभु के तुम हो सभी उपासक,
उस वीर-वीर जिनके सद्धर्म के सुधारक,
अतएव तुम भी वैसे, बनने का ध्यान रक्खो,
आदर्श भी उसी का आखो के आगे रक्खो ॥

सकीर्णता हटाओ, दिल को बडा बनाओ,
निज कार्यक्षेत्र की अब सीमा को कुछ बढाओ,
सब ही को अपना समझो, सबको सुखी बना दो,
औरो के हेतु अपने, प्रिय प्राण भी लगा दो ॥

ऊँचा, उदार, पावन, सुख, शान्ति-पूर्ण, प्यारा,
यह धर्म वृक्ष सब का, निज का नही तुम्हारा,
रोको न तुम किसी को, छाया मे बैठने दो,
कुल-जाति कोई भी हो, सताप मेटने दो ॥

जो चाहता हो अपना, कल्याण मित्र ! करना,
जगदेक-बन्धु जिन का, पूजन पवित्र करना,
दिल खोल कर के करने दो चाहे कोई भी हो,
फलते है भाव सबके, कुल, जाति कोई भी हो ॥

सतुष्टि शान्ति सच्ची होती है ऐसी जिससे,
ऐहिक क्षुधा, पिपासा-रहती है फिर न जिससे,
वह है प्रसाद प्रभु का, पुस्तक स्वरूप, इसको,
सुख चाहते सभी है, चखने दो चाहे जिसको ॥

यूरुप अमेरिकादिक, सारे ही देश वाले,
अधिकारि इसके सब है, मानव—सफेद-काले,
अतएव कर सके वे, उपभोग जिस तरह से,
यह बाँट दीजिये उन, सब ही को इस तरह से,

यह धर्मरत्न धनिको ! भगवान की अमानत,
हो सावधान सुन लो, करना नही खयानत,
दे दो प्रसन्न मन से, यह वक्त आ गया है,
इस ओर सब जगत का, अब ध्यान लग रहा है,

कर्त्तव्य का समय है, निश्चिन्त हो न बैठो,
थोडी बडाइयो मे उन्मत्त हो न ऐठो,
सद्धर्म का सँदेशा प्रत्येक नारी नर मे,
सर्वस्व भी लगा कर फैला दो विश्व भर मे,

मेरे पिता की परलोक यात्रा पर

× × ×

इस प्रकार जब तक मै रोया तब तक मिल कर के सब लोग,
अर्थी सज कर चले सुविधिवत् देना पडा मुझे भी योग,
पहुँचे वहाँ जहाँ अगणित जन जले खाक मे सोते है
पुद्गल पिडो के रूपान्तर जहाँ निरन्तर होते है।

चिता बना उस प्रेत भूमि मे प्रेत पिता का पधराया,
किया चरम सस्कार पलक मे प्रचलित हुई अनल माया,
धाँय-धाँय कर जीभ, काढ तब धूम-ध्वज ने धधक-धधक
मिला दिया पाँचो तत्त्वो मे वह शरीर कर पृथक पृथक।

दी प्रदक्षिणा मैने तब उस जलती हुई चिता को घेर,
हृदय थाम, कर अश्रु सवरण, किया निवेदन प्रभु से टेर,
"शान्ति प्रदायक शान्तिनाथ जिन! शोकशान्त सबका करके,
जनक-जीव को शान्त रूप निज देना शरण कृपा करके।

इस चरित्र को देख चित्त सबके ही हुए विरक्त विशेष,
सदय हुए पाषाण हृदय भी दुष्कर्मो से डरे अशेष,
रहे निरन्तर यदि अन्तर मे ऐसे ही परिणाम कही,
तो समझो ससार पार होने मे कुछ भी वार नही।

जीवन-लीला की समाप्ति यह पढ के पाठक समझेगे,
जल बुदबुद सम जीवन जग मे इसके लिए न उलझेगे,
स्व स्वरूप का सदा चिन्तवन करके पर को छोडेगे,
पर के पोषक मोहक निज के भोगो से मुँह मोडेगे।

श्री भगवन्त गणपति गोयलीय

आपका वास्तविक नाम श्री भगवान दास है, आपके पिता जी का नाम श्री गणपति लाल था। कविता का कल्पवृक्ष आपके कुटुम्ब में सदा ही फूला फला है। आपके पितामह श्री भूरे लाल जी मोदी आशुकवि थे।

भगवन्त जी बहुपाठी, विचारशील और प्रतिभावान पुरुष हैं। हिन्दी-हिन्दुस्तानी के अतिरिक्त आपको बँगला, गुजराती और मराठी साहित्य का अच्छा ज्ञान है।

आपकी गद्य-पद्यमयी प्राथमिक रचनाएँ प्रायः २५-३० वर्ष पहिले 'विद्यार्थी' और 'भारतजीवन' नामक पत्रो में प्रकाशित हुई थीं। आपकी कविताओ को उस समय भी बडी रुचि से पढा जाता था। अनेक कवियो को आपकी रचनाओ से स्फूर्ति मिली और आपके विचारो से समाज में जागृति हुई।

आप 'जातिप्रबोधक' 'धर्म—दिवाकर' और 'महाकौशल कॉंग्रेस बुलैटिन' के वर्षो तक सपादक रहे हैं। आपके लेख, कविताएँ और कहानियाँ भारत के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पत्रो मे छपती रही हैं। 'जाति प्रबोधक' मे लिखी हुई आपकी कहानियो को हिन्दुस्तान भर में देशी पत्रो ने उद्धृत किया और सुधारक-सस्थाओ ने अनुवादित कर लाखों की सख्या में बँटवाया। आप की कहानियो का सग्रह हिन्दी में भी छपा था।

भगवन्त जी कर्मठ देश-सेवक है। आप रायपुर सेन्ट्रल-जेल की काल-कोठरियो में महीनो रहे और वहाँ के "उच्च पदाधिकारियो के आदेश पर आपको भयकर मार मारी गई जिसकी आवाज नागपुर कौंसिल से टकराई।"

आपकी कविताओ मे सुकुमार भावना और कोमल अनुभूति के दर्शन होते हैं। हृयद-गत भाव को आप चुने हुए, सरस शब्दो में व्यक्त कर के पाठक की हृत्तन्त्री को झनझना देते हैं।

सिद्धवर कूट

सिद्धवर की ही असीम पुनीतता
पातकी को खीच ले आई इधर ,
मै नही आया, न मेरा दोष है ,
हे अचल ! हे शैल ! हे सारगधर !
फिर भला क्यो मौन है धारण किया ,
जानते हो क्या कि हूँ मै पातकी ?
हाय, तुम ही सोचने जब यो लगे ,
तो कमी कलि मे रही किस बात की ?
मौन का कुछ दूसरा ही हेतु है ,
गिरि ! न तुम यो सोचते होगे, अरे ,
याद क्या तो पूर्व दिन है आ रहे ,
गर्व-मिश्रित, सौख्य औ आशा भरे ?
जब कि मुनिगण ठौर ठौर विराज के—
या खडे हो, योग थे करते रहे ,
और फिर उपदेश दे चिर सुख भरे,
विश्व के विकराल दुख हरते रहे ,
तो उन्ही के विरह मे या ध्यान मे
इस तरह एकान्त मे एकाग्र हो ,
ध्यान क्या तुम कर रहे आनन्द से ?
धन्य गिरिवर ! सिद्धिवर ! तुम धन्य हो ,
या कि उनकी स्वार्थ-परता पर तुम्हे ,
हे निराश्रित-त्यक्त गिरि ! कुछ खेद है ?
तो विचारो, नित्य होता वृक्ष का-
विहग-दल से उषा मे विच्छेद है ,

पर विटप तो नित्य हँसता खेलता—
और 'हर-हर' गीत गाता सर्वदा,
चद्रिका के साथ करता मोद है—
है, न होता, मग्न दुख मे एकदा,
और तो फिर सोचते हो क्या भला ?
पूर्व वैभव ? आज भी वह कम नही,
इस तुम्हारी धूलि का कण एक ही
विश्व की सपत्ति मे मौलिक कही,
सत्य है वह पुण्य काल न अब रहा,
वृक्ष भी तुम पर न उतने है भले,
और फिर वे फलफलाते ह नही,
अऋतु मे क्यो फूलने फलने चले ?
वात ऋषियो की किनारे ही रही,
आज उतने विहग क्या बसते यहाँ ?
इन्द्र का आना तुम्हे अब स्वप्न है !
पतित पापी भी अरे आते कहाँ !
रो दिया खग की चहक के व्याज से ?
शान्त हो हे सिद्धिवर, ढाढस धरो,
नर्मदा भी है तुम्हारे दुख से-
दुखिनी, कुछ ध्यान उसका भी करो,
नर्मदा तो आज भी रोती हुई,
सिद्धवर के पूर्व वैभव की कथा—
कह रही है, बह रही बन मथरा,
सान्त्वना देती हुई—यह दुख वृथा
नर्मदे ! तू कौन है कह तो तनिक.
काम तेरे है अलोकिकता भरे।
परिक्रमा देती उधर ऊँकार की,
इधर इनके चरण मे मस्तक धरे,

क्या यही दृष्टान्त है दिखला रही
एक से हो उभय धारा तू यहाँ—
जैन, वैष्णव आदि सब ही एक है,
एक उद्गम, एक मुख सब का वहाँ,
सिद्धवर ! भाओ यही अब भावना,
वीर प्रभु का शीघ्र ही अवतार हो,
दानवी दुर्भाव सारे नष्ट हो,
मुक्त हो हम, देश का उद्धार हो ।

नीच और अछूत

नाली के मैले पानी से मैं बोला हहराय ,
"हौले बह रे नीच ! कहीं तू मुझ पर उचट न जाय" ।
'भला महाशय ! कह पानी ने भरी एक मुस्कान,
बहता चला गया गाता सा एक मनोहर गान ।
एक दिवस मैं गया नहाने किसी नदी के तीर,
ज्योंही जल अञ्जलि में लेकर मलने लगा शरीर ,
त्यों ही जल बोला "मैं ही हूँ उस नाली का नीर '
लज्जित हुआ, काठ मारा सा मेरा सकल शरीर ।
दनुअन तोडी 'मुँह में डाली' वह बोली मुसुकाय—
"ओह महाशय ! बडी हुई मैं नाली का जल पाय ,
फिर क्यो मुझ अछूत को मुह मे देते हो महराज"
सुनकर उसके बोल हुई हा ! मुझको भारी लाज

खाने को बैठा, भोजन में ज्यों ही डाला हाथ,

त्यों ही भोजन बोल उठा चट विकट हँसी के साथ—

"नाली का जल हम सब ने था किया एक दिन पान

अत नीच हम सभी हुये, फिर क्यों खाते श्रीमान् ?"

एक दिवस नभ में अभ्रों की देखी खूब जमात ,

जिससे फड़क उठा हर्षित हो मेरा सारा गात !

मैं यों गाने लगा कि "आओ अहो ! सुहृद घन वृन्द,

बरसो, शस्य बढ़ाओ, जिससे हो हमको आनन्द ॥"

वे बोले, "हे बन्धु, सभी हम हैं अछूत औ नीच ,

क्योंकि पनाली के जलकण भी हैं हम सब के बीच ।

कहीं अछूतों में ही जाकर बरसेंगे जी खोल

उनके शस्य बढ़ेंगे, होगा उनको हर्ष अतोल" ।

मैं बोला "मैं भूला था, तब नहीं मुझे था ज्ञान ,

नीच ऊँच भाई-भाई हैं भारत की सन्तान ।

होगा दोनों बिना न दोनों का कुछ भी निस्तार ,

अब न करूँगा उनसे कोई कभी बुरा व्यवहार" ॥

वे बोले "यह सुमति आपकी करे हिन्द का त्राण ,

उनके हिन्दू रहने में है भारत का कल्याण ।

उनका अब न निरादर करना, बनना भ्रात उदार,

भेद भाव मत रखना उनसे करना मन से प्यार" ।

श्री पं० मूलचन्द्र जी, 'वत्सल'

विद्यारत्न श्री प० मूलचन्द्र जी 'वत्सल', साहित्यशास्त्री, समाज के पुराने सरस कवि है। पच्चीस वर्ष पूर्व आप कविता के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए थे। उस समय खड़ी बोली की कविताओ का जैन कविता क्षेत्र में अभाव सा था। आपके द्वारा प्रवाहित काव्यधारा ने एक नवीन दिशा का प्रदर्शन किया। जाति सुधार और सामाजिक क्रान्तिके लिए आपकी कविताएँ वरदान सिद्ध हुई। काव्य-क्षेत्र में आपने जिस निर्भीकता का परिचय दिया वह स्तुत्य है। आप जैन पौराणिक कहानियो और नई शैली के गद्य लेखो के प्रमुख प्रचारको और मार्ग दर्शको में से है।

आपकी प्रतिभा बहुमुखी होने के अतिरिक्त, सदा जागृत है। हिन्दी की काव्य-धारा परिस्थितियो और प्रभावो के आधीन जो दिशा पकडती गई, आप सावधानी से स्वय उसका अनुगमन ही नही करते गये किन्तु समाज के कवियो का नेतृत्व भी करते रहे है। एक ओर यदि आप 'हरिऔध' के 'प्रिय प्रवास' के ढग की कविता लिख सकते है, तो दूसरी ओर 'पन्त' के 'पल्लव', 'दिनकर' की 'रसवन्ती', सोहनलाल द्विवेदी की 'भैरवी', और बच्चन के 'एकान्त सगीत' की शैली को भी अपना सकते है।

वीणा वाली

सुन्दरि ओ ! वीणावाली
मेरी तीव्र-पिपासा की गति अनुभव करने वाली।
गाती जा—हाँ मधुमय सुन्दर गायन गाती जा,
तनिक मिष्टरस प्यासे को भी, अरी ! पिलाती जा।

सुन्दरि ! मधुर प्रकृति की तेरे कंठ मध्य है माया,
तेरी मृदुल तान में छिप बैठी वसंत की छाया,
री उदार बन कर मुझको तू तनिक छकाती जा
मेरे अन्तस्तल को सुन्दर सरस बनाती जा।
शुष्क हृदय में सरस सुधा संगीत बहाती जा,
वीणा-वाली सरस गुलाबी गायन गाती जा।

ऐसा, हाँ, ऐसा प्रभुता से भरा मनोरम मुदमय,
हो जाए जिसके संगीत मध्य मेरा मानस लय।
सरस तान में तव लहरों में लहर मिला दूँ मैं,
एक मेक हो यह अपना अस्तित्व मिटा दूँ मैं,
ऐसा, हाँ, ऐसा ही कोई दिव्य गान गाती जा,
वीणावाली ! ऐसा मृदु संगीत सुनाती जा।

हे वीणावाली सुन्दरि ! सौभाग्यशालिनी तू है,
करुणा मानसरोवर की कोमल मृणालिनी तू है,
तेरी कला कुशलता का यदि भोग्य तुझे मिलता है,
वारिदान का ऐसा अवसर योग्य तुझे मिलता है,
तो पिपासु को करुणा कर हे तनिक पिलाती जा,
इस निराश जीवन-उपवन की कली खिलाती जा।

मेरा संसार

दुख भरा ससार मेरा—
कर रहा है, वेदना के साथ,
आहो पर बसेरा,

छिप रहा कुचले हृदय का, करुण-क्रन्दन नाद इसमे।
मूक-प्राणो का महा सताप है आबाद इसमे,

अश्रु पूरित लोचनो मे,
है समाया प्यार मेरा।
दुख भरा ससार मेरा

करुण-क्रन्दन सुन वधिर सा, हो गया है यह गगन तल।
आज धुधले बन गये है, आह! मेरे चित्र उज्ज्वल।

कौन हलका कर सकेगा ?
वेदना का भार मेरा।
दुख भरा ससार मेरा॥

समझता ससार मेरे करुण रोदन को बहाना।
उमडता उन्माद मेरा, आह! किसने आज जाना।

कौन सुनता है अरे! यह
मौन हाहाकार मेरा।
दुख भरा ससार मेरा॥

अमरत्व

मै अग्नि कणो से खेलूगा—
वह लाँघ-लाँघ पर्वत माला, रे! बढी आ रही है ज्वाला,
मै उसको पीछे ठेलूँगा, मै अग्नि कणो से खेलूँगा।
मै तो लहरो से खेलूँगा—
रे वह प्रमत्त सागर कैसा, लहराता प्रलयकर जैसा,
मै उसे करो पर ले लूँगा, मै तो लहरो से खेलूँगा।
मै मृत्यु-किरण से खेलूँगा।
मै अमर अरे! कब मरता हू, अमरत्व लिये ही फिरता हूँ,
मै यम-दडो को झेलूँगा, मै मृत्यु-किरण से खेलूँगा।

प्यार!

सजनि हे! कैसा जग का प्यार।
स्वर्णिम रश्मि-राशि से जगमग,
तरल हास्य से विकसित कर जग—
निर्मम रवि! हे सजनि!
उषा का करता है सहार।
निशि का अचल चीर फाड कर,
उज्ज्वल निज आभा प्रसार कर,
तम का कर सहार पूर्णिमा—
सजती निज शृगार।
कलिकाओ का हृदय बिधा कर
अपने तन का साज सजा कर
उनकी पीडा भूल अरे—
वह बन जाता है हार।
सजनि है कैसा जग-व्यवहार।

श्री गुणभद्र अगास

प० गुणभद्र जी को समाज में कवि के रूप में आदर मिला है और इस आदर को उन्होने परिश्रम और साधना के द्वारा प्राप्त किया है। कविता के अनेक रूप हैं, अनेक शैलियाँ हैं। कवि जब साहित्य के किसी विशेष अग को अपना कार्य-क्षेत्र बना लेता है तो उसकी शैली उसी दिशा में स्थिर-सी होती चली जाती है। श्री गुणभद्र जी ने परम्परागत कथा-कहानियो को पद्य-बद्ध करने का जो कार्य प्रारम्भ मे हाथ मे लिया था, उसे वह सफलता से सम्पन्न करते चले जा रहे हैं। नि:सन्देह उनकी शैली मुख्यत वर्णनात्मक है, भावात्मक नही। किन्तु लम्बी कथाओ को भावात्मक शैली में रचने के लिए कवि को बहुत समय चाहिये, सुरुचिपूर्ण क्षेत्र चाहिये और निरापद साधन चाहिये। दूसरे, प्रत्येक कवि 'साकेत' नही लिख सकता, शायद 'जयद्रथ-वध' लिख सकता है। फिर भी, आज जो 'जयद्रथ-वध' लिख रहा है, उससे कल हम 'साकेत' की आशा कर ही सकते हैं। कवि को साधन की भी आवश्यकता होती है और साधना की भी।

गुणभद्र जी ने साहित्य के एक उपेक्षित अग को लिया है और उसे अपनी रचना से प्रकाश में ला रहे हैं। इस दिशा में उनका प्रयास अपने ढग का अनूठा है। कितने ही उठते हुए कवियो को उनसे स्फूर्ति और प्रेरणा मिली है। साहित्य की बहुमुखी आवश्यकताओ के आधार पर गुणभद्र जी को युग-प्रवर्तको में स्थान मिलना ही चाहिये।

सीता की अग्नि परीक्षा

× × ×

"हे नाथ ! दो आदेश, कर विषपान दिखलाऊँ यहाँ,
अथवा भयकर सर्प को कर मे पकड लाऊँ यहाँ।
पड अग्नि मे जग को दिखा दूँ शील कहते है किसे,
वह कृत्य कर सकती कभी, मानव न कर सकता जिसे।"
श्री राम बोले "जानता मे शील तव निर्दोष है,
तो भी कुटिल जग-जन तुझे, देता निरन्तर दोष है।
घुस अग्नि के ही कुड मे, अपनी परीक्षा दो हमे,
जिससे तुम्हारे शील का, 'सन्देह' जगती मे शमे"।

× × ×

अपनी परीक्षा के समय जनकात्मजा बोली यही,
"मन मे, वचन मे, काय मे पर को कभी चाहा नही—
यदि हे अनल ! मिथ्यावचन हो भस्म कर देना मुझे,
कैसी सदा मै विश्व मे हू, यह बताना है मुझे।"
शुभ जाप जपती मत्र का उस कुण्ड मे कूदी तभी
तत्काल निर्मल नीर से, वह भर गई वापी सभी।
कुछ काल पहिले हा ! महा विकराल ज्वाला थी जहाँ,
अधुना सरोवर पद्मिनीमय शोभता सुन्दर वहाँ।
सुन्दर सरोवर मध्य देवी-सी, दिखाती जानकी,
शुभ सत्य के रक्षार्थ यो परवा न की निज प्राण की।

(एक अश)

भिखारी का स्वप्न

एक था भिक्षुक जगत का भार था ,
माँग के खाना सदा व्यापार था ,
बाँध के रहता नगर-तट झोपडी ,
हा ! बिताना कष्ट मे अपनी घडी ।।

थी न उसको विश्व की चिन्ता बडी
सब सहे वह मौसमी बाधा कडी ,
द्रव्यवानो सा न उसका ठाठ था ,
खाट पर कर्कश पुराना टाट था ।।

पास मे था एक पानी का घडा ,
ओढने को था फटा कम्बल कडा ,
मक्षिकाये भिन-भिनाती थी वहाँ ,
मच्छरो की थी कमी उसमे कहाँ ।।

माँग लाता रोटियाँ जो ग्राम मे ,
बैठ के खाता बडे आराम से ,
भोज्य जो खाते हुए बचता कही ,
टाँग देता एक कोने मे वहीं ।।

और सो जाता निकट के तरु तले ,
नीद मे जाते पहर उसके चले ।
एक दिन मिष्टान्न भिक्षा मे मिला ,
प्राप्त कर उसका हृदय पकज खिला ।।

मग्न था वह हर्ष पारावार मे,
इन्द्रपद पाया अहो आहार मे।
खा उसे कुछ स्वच्छ सीतलजल पिया,
हो गया था तृप्त सा उसका हिया॥

फिर बिछाकर खाट टूटी, प्रेम से,
सो गया भिक्षुक बडे ही क्षेम से।
शीघ्र आया स्वप्न तब उसको नया,
विश्व का अधिराज मैं हूं हो गया॥

झोपडी मिट कर हुई प्रासाद है,
अब उसी पर पक्षियो का नाद है।
भीतरी सब भाग हीरो से जडे,
दास जोडे हाथ द्वारो पर खडे॥

वाहनो की अब रही है त्रुटि नही
हो गई सम्पूर्ण अब मेरी मही,
दिव्य था आभूषणो मे गात्र भी,
वह बना लावण्य का शुभ पात्र ही॥

दिव्य देवी मच पर वह शोभता,
नारियो के मुग्ध मन को मोहता,
दासिये पखा ढुलाती थी खडी,
सौख्य की देखी न थी ऐसी घडी॥

स्वप्न में साम्राज्य उसने पा लिया ,
मानवश भी दण्ड कितनों को दिया ।
शत्रु चढ आया तभी उस राज्य पर ,
सामने लडन चला वह शीघ्रतर ।।

देख के हथियार सब उसके नये ,
रुक के दृग शीघ्र भय से खुल गये ,
रह गया चित्राम सा, दृग को मले ,
सोचता क्या भोग मुझको थे मिले ।।

ले गया है कौन अब उनको छुडा ,
हो रहा मुझको यहाँ विस्मय बडा ।
सौम्य-सी इक मूर्ति दिखी थी नई ,
सामने से लुप्त सारी हो गई ।।

स्वप्न में ही लोक के ये भोग है ,
खेद ! उसमे मर्त्य देते योग है ।
सोचिये तो स्वप्न सा ससार है ,
धर्म इसमे सार सौ सौ बार है ।।

युगानुगामी

कवि रत्न पं० चैनदास जी, 'न्यायतीर्थ'

एक साहित्यिक के नाते, प० चैनसुखदास जी का स्थान जैनसमाज के विद्वानो में बहुत ऊँचा है। आप प्रतिभा-सम्पन्न सफल कवि तो हैं ही, साहित्य के अन्य क्षेत्रो पर भी आपका अधिकार है। गद्य लेखक, गल्प-कार, सम्पादक और ओजस्वी वक्ता के रूप में आपने साहित्य और समाज की सेवा की है। इसके अतिरिक्त, आप स्वतन्त्र-विचारक और समाज-सुधार-सम्बन्धी आन्दोलनो मे प्रमुख भाग लेनेवाले कर्तव्य-निष्ठ नेता भी हैं।

प० चैनसुखदासजी लगभग २५-३० वर्ष से साहित्यिक क्षेत्र में आये हुए हैं। आप जब १५ वर्ष के थे तभी उस समय की प्रमुख सस्कृत पत्रिका 'शारदा' मे साहित्यिक लेख और सरस कवितायें लिखा करते थे। सस्कृत की पद्यरचना मे आप आशु-कवि हैं। आप मे धाराप्रवाह रूप मे सस्कृत गद्य लिखने और बोलने की क्षमता है।

आपकी कविताओ में रस भी है और ओज भी। यह दार्शनिक तत्त्व को सुन्दर पदावलि द्वारा आकर्षक ढग से कहते हैं। तत्त्व की गहनता को भाषा की सरसता द्वारा सजाकर आप अपनी कविता मे रहस्यवाद की झलक ले आते हैं, इससे कविता में विशेष चमत्कार उत्पन्न हो जाता है।

आपके सस्कृत ग्रथ 'भावनाविवेक' और 'पावन-प्रवाह' प्रकाशित हो चुके हैं। आजकल आप जयपुर में दिगम्बर जैन महाविद्यालय के प्रधानाध्यापक हैं।

सत्ता का अहंकार

तेरा आकार बना कैसे सागर ! बतला इतना विशाल ?
है बिन्दु बिन्दु मे अन्तर्हित
तेरा गाम्भीर्य अपार अतल ,
इनकी समष्टि यदि बिखरे तो
दीखे न कही वसुधा मे जल ।
तेरा स्वरूप तब हो विलुप्त जो आज बना इतना कराल ।।
तेरी सत्ता का क्या स्वरूप
इन बिन्दु बिन्दु मे है विभिन्न ?
तुम हो अज्ञात अपरिचित से ,
इस दिव्य तथ्य से अह मन्य ।
है श्रेय बना किनको उनका जो कुछ भी है तेरे कमाल ?
एकैक बिन्दु ने आ आकर ,
तेरा आकार बनाया है ।
अपने तन को तुझ को देकर ,
तेरा गाम्भीर्य बढाया है ।
ये जीवनतत्व तुम्हारे है ज्यो पटजीवन है तन्तु जाल ।
जिनमे इतना वैभव पाया
उनको मत फेको हो प्रमत्त ,
तुम इनसे बने न ये तुमसे ,
इनको क्या है ? तेरा प्रदत्त ।
सब हँसते है ये देख देख, उपहास जनक तेरी उछाल !

इनके विनाश मे नाश, और
इनके सरक्षण मे रक्षा।
तेरी है सागर ! निराबाध–
यह जीवन-रक्षण की शिक्षा।
तू मान, निरापद है यह पथ, होगा इससे तू ही निहाल !

जीवन-पट

जीवनपट यह बिखर रहा है
तन्तु जाल सब क्षीण हो गया,
सारा स्तभक तत्व खो गया
पलभर भी अब रहना इसमे
भगवन् ! मुझको अखर रहा है।

समोहन की मधुमय हाला,
पी पीकर मै था मतवाला,
नशा आज उतरा है अब तो,
जीवन मेरा निखर रहा है।

मृत्यु लहर पर खेल रहा मै,
सब विपदाएँ झेल रहा मै,
अन्तर्द्वन्द्व मचा प्राणो मे,
यह समीर मन मथित रहा है

अन्तिम वर

बहता बहता अब आया हूँ
तेरे श्री चरणो मे भगवन्
अपने को लाया हूँ!

अहकार के ग्रह मे अटका,
पता न पाया तेरे तट का,
भूला था इस दिव्य तथ्य को—
मै तेरी छाया हूँ!

कभी न जाना क्या अपना है,
क्या जीवन सचमुच सपना है,
क्या यह ही कहना, जगना है,
तू है मेरा आत्मतत्व
औ मै तेरी काया हूँ!

केवल अब यह वर पाना है,
इसीलिए मेरा आना है,
फिर न कहूँ तेरे समक्ष मै
मै तेरी माया हूँ!

श्री पंडित दरबारी लाल जी 'सत्य-भक्त'

'सत्य-धर्म' के सस्थापक, पडित दरबारीलालजी ने, व्यक्ति और कवि—दोनो रूप में समाज और साहित्य में अपना विशेष स्थान बनाया है। वह उच्च कोटि के लेखक है, विद्वान है, विचारक है और कवि है। जीवन में जिस साधना का मार्ग उन्होने अपनाया है और जिस मानसिक उथल-पुथल के द्वारा वह उस मार्ग तक पहुँचे है, उसमें उनका दार्शनिक मन और भावुक हृदय दोनो समान रूप से सहायक हुए है—कुछ आलोचक है जो कहेंगे, 'सहायक' नही, 'बाधक' हुए है।

जो भी हो, इसमें सन्देह नही कि 'सत्यभक्त' जी बहुत ही सवेदना-शील कवि है। उनकी कविता जब हृदय के भावो और मानसिक द्वदो के स्रोत से प्रवाहित होती है, तो उसमें एक सहज प्रवाह और सौन्दर्य होता है। जिस प्रकार वह विचारो को सुलझा कर मन में बिठाते है और दूसरो तक पहुँचाते है, उसी प्रकार उनके भाव भी कविता का रूप लेने से पहले ही सुलझ लेते है। उनकी समवेदनायें पाठको के हृदय को छू कर ही रहती है। यह उनकी रचना की बहुत बडी सफलता है। जो कवितायें प्रचारात्मक है या किसी आवश्यकता को पूरा करने के लिए लिखी गई है, वह इस श्रेणी मे नही आती।

'सत्यभक्त'जी ने 'सत्यसन्देश' और 'सगम' नामक पत्रिकाओ द्वारा हिन्दी ससार ही नहीं, मानव-समार की सेवा की है, और कर रहे है। उनके लेख सुपाठ्य और सग्रहणीय होते है। विश्व के धर्मों का मनन, सन्तुलन और समन्वय करके 'सत्यधर्म' की प्रतिष्ठापना आपके जीवन का लक्ष्य है। वर्धा में 'सत्याश्रम' की स्थापना करके अब आप वही रहते है।

उलहना

कोमल मन देना ही था तो,
क्यो इतना चैतन्य दिया ?

शिशु पर भूषण-भार लादकर,
क्यो यह निर्दय प्यार किया ?

यदि देते जडता, जग के दुख–
हानि नही कुछ कर पाते,

त्रिविध-ताप से पीडित करके,
मेरी शान्ति न हर पाते।

जडता मे क्या शान्ति न होती ?
अच्छा है, जडता पाता,

किसका लेना, किसका देना,
वीतराग-सा बन जाता।

अपयश का भय, कर्तव्यो की–
रहती फिर कुछ चाह नही,

तुम सुख देते या दुख देते,
होती कुछ पर्वाह नही।

लडते लोग धर्म के मद मे,
मेरा क्या आता जाता ?

दुखियो की आहो से भी यह,
हृदय नही जलने पाता।

विधवाओ के अश्रु न मेरी,
नजरो मे आने पाते,

नही आँसुओ की धारा से,
ये कपोल धोये जाते।

'हाय ! हाय !' चिल्लाता जग, पर–
होते कान न भारी ये,

नही सुखाती, नही जलाती,
चिन्ता की चिनगारी ये।

जड होकर जड के पूजन मे,
निजपर सब भूला रहता,

दुनिया के दुख की चिन्ता का–
बोझ हृदय पर क्यो सहता ?

पर, जो हुआ हो गया, अब क्या ?
अब तो इतना ही कर दो,

मन को वज्र बना दो, उसमे–
साहस और धैर्य भर दो।

'रोना' तो मै सीख चुका हू,
अब कुछ 'करना' सिखला दो,

इस कर्तव्य-यज्ञ मे बढ कर–
हँस हँस मरना सिखला दो।

क़ब्र के फूल

कब्र पर आज चढाये फूल !

जब तक जीवन था तब तक क्षणभर न रहे अनुकूल ।
कण कण को तरसाया क्षण क्षण, मिला न अणुभर प्यार
अब आँखो से बरसाते हो, मुक्ताओ की धार ।

देह जब आज बनी है धूल !
कब्र पर आज चढाये फूल ॥

आज धूल भी अजन सी है, नयनो का शृगार ,
काला ही काला दिखता था, तब हीरे का हार ।

कल्पतरु था तब पेड बबूल ।
कब्र पर आज चढाये फूल ॥

विस्मृति के सागर मे मेरी, डुबा रहे थे याद ,
नाम न लेते थे, कहते थे, हो न समय बर्बाद ।

मगर अब गये भूलना भूल ।
कब्र पर आज चढाये फूल ॥

सदा तुम्हारे लिये किया था, धन-जीवन का त्याग ,
सीच सीच करके अँसुओ से, हरा किया था बाग ।

मगर तब हुए फूल भी शूल ।
कब्र पर आज चढाये फूल ॥

अब न कब्र मे आ सकती है, इन फूलो की बास ,
मुझे शान्ति देता है केवल, यही कब्र का घास ।

शान्त रहने दो, जाओ भूल ।
कब्र पर आज चढाये फूल ॥

झरना

(१)

बहा दे, छोटा सा झरना !
प्यासा होकर सोच रहा हूँ कैसे क्या करना ?
बहा दे, छोटा सा झरना ।

(२)

मरु-थल चारो ओर पडा है ,
बालू का ससार खडा है ,
बूद-बूँद की दुर्लभता मे, कैसे रस भरना ?
बहा दे, छोटा सा झरना ।।

(३)

नयन-नीर बरसाना होगा,
मानस को भर जाना होगा,
शीतल मन्द सुगन्ध पवन मे जगत्ताप हरना,
बहा दे, छोटा सा झरना ।।

(४)

मेरी थोडी प्यास बुझा दे,
थोडा सा ही झरना ला दे ,
चमन बना दूँगा इस मरु को, भले पडे मरना,
बहा दे, छोटा सा झरना ।।

पं० नाथूराम जी डोंगरीय

पडित नाथूराम जी डोगरीय समाज के सुपरिचित लेखको और कवियो में अपना विशेष स्थान रखते है। आपके लेख अनेक जैन-अजैन पत्रो में छपते रहते है जो विषय, भाषा और भाव की दृष्टि से पठनीय होते है।

इन्होने हाल ही में एक पुस्तक "जैनधर्म" लिखी है। जिसमें जैन-धर्म के मुख्य मुख्य सिद्धान्तो का सरल और प्रभावपूर्ण भाषा में प्रतिपादन किया है। आपने भक्तामर स्तोत्र' का पद्यानुवाद रुबाइयो की छन्द-शैली में किया है, जो प्रकाशित हो चुका है।

आपकी कवितायें विचार और भाव की दृष्टि से अच्छी होती है।

मानव-मन

विश्व-रगभू मे अदृश्य रह
बनकर योगि-राज सा मौन,
मानव-जीवन के अभिनय का
सचालन करता है कौन ?

किससे इगित पर ससृति मे
ये जन मारे फिरते है ?
मृग-तृष्णा मे शान्ति-सुधा की
भ्रान्त कल्पना करते है।

आशा और निराशाओ की धारा कहाँ बहा करती ?
अभिलाषाएँ कहाँ निरन्तर नवक्रीडा करती रहती ?

क्षण भगुर यौवन-श्री पर यह
इतराता है इतना कौन ?
रूप-राशि पर मोहित होकर
शिशु-सम मचला करता कौन ?

बिन पग विश्व-विपिन मे करता–
रहता कौन स्वछन्द विहार ?
बन सम्राट, राज्य बिन किसने
कर रक्खा सब पर अधिकार ?

रो कर कभी विहँसता है, तो फिर चिन्तित हो जाता है ।
भाव-भङ्गि के नित गिरगिट-सम नाना रग बदलता है ।।

चित्र बिचित्र बनाया करता
बिन रँग ही रह अन्तर्धान ,
किसने चित्र कला का ऐसा
पाया है अनुपम बरदान ?

प्रिय मन ! तेरी ही रहस्यमय,
यह सब अजब कहानी है ,
कर सकता जगती पर केवल,
मन ! तू ही मनमानी है ।।

किन्तु वासना-रत रहता ज्या, त्यो यदि प्रभु चरणो मे प्यार ।
करता, तो अब तक हो जाता भवसागर से बेडा पार ।।

श्री सूर्यभानु डाँगी, 'भास्कर'

डाँगी सूर्यभानु जी, बडी सादडी (मेवाड) के रहनेवाले हैं। लगभग १०-१२ वर्ष से कवितायें लिख रहे हैं जो प्रायः पत्रो में प्रकाशित हुई हैं। आप प० दरबारीलाल जी 'सत्यभक्त' के सहयोगी हैं, और अपनी रचनाओ में सत्यधर्म के सिद्धान्तो का प्ररूपण करते हैं—जो धार्मिक कविता के लिए सदा से ही उपयुक्त विषय रहे हैं। आपकी कवितायें बहुत सरस, भावपूर्ण और सङ्गीतमय होती हैं।

विनय

मम हृदय कमल विकसित कर, रे।
यह विनय विमल उर मे धर, रे॥

दिनकर बनकर सघन गगन पर,
रुचि कर मन-हर अरुण वरण भर,
अन्तर मे छिपकर अन्तर-नर,
चमक अचचल चिर स्थिर, रे। मम हृदय०

स्नेह सुधा का स्रोत बहा दे,
शिव सुखमय सुषमा सरसा दे,
लोल ललित लहरी लहरा दे,
विप्लवमय जीवन भर रे। मम हृदय०

शत्रु मित्र पर एक भावना,
त्रिभुवन की कल्याण कामना,
'सूर्यभानु' की यही प्रार्थना
विहरित करना घर घर रे। मम हृदय०

संसार

अपनी सुख दुख की लीला से बना हुआ सारा ससार ।।

अणु-अणु परिवर्तित है प्रति पल
इसीलिए कहलाता चचल

सत्व रूप मे अचल, बिमल है नित्यानित्य बिचार ।
अपनी सुख दुख की लीला मे बना हुआ सारा ससार ।।

अभी जन्म है, अभी मरण है
अभी त्रास है, अभी शरण है

धूप-छाँह सम, हास-अश्रुमय जीवन का सचार ।
अपनी सुख दुख की लीला से बना हुआ सारा ससार ।।

अभी बाल है, अभी युवा है
अभी वृद्ध है, अभी मुवा है

कैसा रे परिवर्तनमय है, यह निष्ठुर व्यापार ।
अपनी सुख दुख की लीला मे बना हुआ सारा ससार ।।

यहाँ कहाँ रे शान्ति चिरन्तन !
कर्म दलो का निविड निबन्धन ,

'सूर्यभानु' है सग निरन्तर सृजन और सहार ।
अपनी सुख दुख की लीला मे बना हुआ सारा ससार ।।

श्री दद्दूलाल जी

आप अमरावती के निवासी हैं, वयोवृद्ध हैं। अमरावती (बरार), जहाँ की खास भाषा मरहठी है और जहाँ पर एक भी हिन्दी स्कूल नही था, वहाँ आपने प्रयत्न करके अनेक हिन्दी-स्कूल खुलवाये हैं। यह हेड-मास्टर थे, अब अवकाश ले लिया है।

आपकी कवितायें जैन-पत्रो में प्रकाशित होती रहती हैं। आप अपनी रचनाओ में पारमार्थिक भावो का बडी सुन्दरता से आधुनिक-शैली में दिग्दर्शन कराते हैं।

मन की बातें

चिर दहता है चिन्तानल मे,
दुख सागर मे गोते खाता,
इसकी साध न पूरी होती,
रह रह कर फिर फिर अकुलाता ॥
व्यथित हृदय की मर्म-वेदना,
सन्तापी की ज्वाल जलाती,
खीच खीच कर स्वर -लहरी को,
उर तन्त्री के तार बजाती ॥
समझ समझ पीडा को क्रीडा,
हो उन्मत्त उसे अपनाया,
कटक पथ पर चलकर, रे मन !
खोया बहुत, न कुछ भी पाया ॥

पागल-परिचय से बञ्चित हो,
तडप-तडप कर सही व्यथाये।
जगदङ्गन मे गूँज रही क्यो,
चिर विषाद की करुण कथाये ?

अन्तस्तल मे अस्थिरता भर,
कैसा मोहक जाल बिछाता,
फँसते भव बन्धन मे प्राणी;
ज्ञानी खगपति भी चकराता।

तृप्त न होता रञ्चमात्र को,
तीन जगत की माया पाई।
व्याकुल चिन्तित होता मानव,
जिसने अपनी चिता सजाई॥

हो मदान्ध तृष्णा मे बर-बर,
मानवता मे आग लगाती।
विषम वृत्तियाँ मन की मारी,
उथल-पुथल कर धूम मचाती॥

चचल है तन, चचल जीवन,
चचल इन्द्रिय सुख की घाते,
चचलता तज, बन बैरागी,
है विचित्र सब मन की बाते॥

पथिक !

भूले पथिक कहाँ फिरते हो ?

थिर हो बैठ हृदय मे सोचो, अमित काल से क्या करते हो ?

मार्ग विपर्यय है यह तेरा,
अनय असुर ने किया अँधेरा,
विषय व्याल ने तुझको घेरा,
ज्ञान-प्रकाश जगा जीवन म
जनम-मरण दुख क्यो भरते हो ?

करण-कटकाकीर्ण विजन मे,
मनोवृत्तियो के भव-बन मे,
राग-द्वेष के शल्य सदन मे,
माया के फर्फन्द जाल म,
जान-बूझ क्यो पग धरते हो ?

तेरा है जग से क्या नाता ?
सोच अरे क्यो भूला जाता ?
काम-क्रोध मद क्यो अपनाता ?
कुटिल काल के चगुल मे फँस—
अन्ध कूप मे क्यो गिरते हो ?
भूले पथिक ! कहाँ फिरते हो ?

श्री शोभाचन्द भारिल्ल

श्री शोभाचन्द भारिल्ल, 'न्यायतीर्थ,' सस्कृत-हिन्दी के विद्वान हैं। आप जैन गुरुकुल ब्यावर मे अध्यापक हैं। बहुत अरसे से लेख और कवितायें लिख रहे हैं जिनका धार्मिक जगत में पर्याप्त आदर है।

आपने अपने बडे भाई श्री रामरतन नायक के 'असामयिक वियोग के तीव्रतर सताप की उपशान्ति के लिए' 'भावना' नामक कविता लिखी है जो प्रकाशित है। सस्कृत 'रत्नाकरपच्चीसी' का हिन्दी पद्यानुवाद भी ब्यावर से प्रकाशित हुआ है। आपकी कविता आध्यात्मिक और विरागमयी होती है।

अन्यत्व

(१)

पहले था मैं कौन, कहाँ से आज यहाँ आया हूँ ?
किस-किस का सबध अनोखा तजकर क्या लाया हूँ ?
जननी-जनक अन्य हैं पाये इस जीवन की बेला,
पुत्र अन्य है, पौत्र अन्य है, अन्य गुरू, है चेला।

(२)

पूर्व भवो मे जिस काया को बडे यत्न से पाला,
जिसकी शोभा बढा रही थी मणियाँ मुक्ता-माला।
वह कण-कण बन भूमडल मे कही समाई भाई !
इसी तरह मिटने वाली यह नूतन काया पाई।

(३)

शैशव अन्य, अन्य यौवन है, है वृद्धत्व निराला,
सारा ही ससार सिनेमा के से दृश्यो वाला।
इन भगुर भावो से न्यारा ज्योति-पुज चेतन है,
मूर्ति-रहित चैतन्य ज्ञान मय, निश्चेतन यह तन है।

(४)

मै हूँ सब से भिन्न, अन्य अस्पृष्ट निराला,
आत्मीय-सुख-सागर मे नित रमने वाला।
सब सयोगज भाव दे रहे मुझ को धोखा,
हाय! न जाना मैंने अपना रूप अनोखा।

आज और कल

जो है आज जरा सा छोटा,
चचल उद्धत और छिछोरा,
कल वह होगा बूढा स्याना,
बूढो का भी दादा नाना॥

छोटी सी अधखिली कली है,
दिखने मे अत्यन्त भली है,
कल वह सुन्दर सुमन बनेगी,
परसो हो रज, धूल सनेगी॥

अभी लोक आलोक भरा है,
दिखती अमृतमयी धरा है,
हा! फिर घोर अँधेरा होगा,
पहनेगा जग काला चोगा ॥

जो है आज द्रव्य मदमाते,
डग भर दूर न चल कर जाते,
कल वे भीख माँगने आते,
तो भी उदर न है भर जाते ॥

आज वसन्त यहाँ है छाया,
विकसित है निसर्ग की माया।
कल हा! ग्रीष्म ताप आयेगा,
सब सौंदर्य बिखर जायेगा ॥

कैसा हाय! काल-नर्त्तन है,
जग का कैसा परिवर्त्तन है,
माथा मारा समझ न पाया,
चिन्ता में निशि-दिवस बिताया ॥

हम भी शून्य रूप होएँगे,
निज अस्तित्व कभी खोएँगे।
ऊँचे चढे अब गिरने को,
पैदा हुए हाय! मरने को ॥

अभिलाषा

विपदाओ के गिरि गिर सिर पर,
टूट पडे, पड जावे,
मेरे नियत मार्ग मे, शतश,
विघ्न अडे, अड जावे।

एक ओर ससार दूसरी ओर अकेला होऊँ,
पर निराश साहस-विहीन हो कोने बैठ न रोऊँ।

हो दरिद्रता, पर न दीनता—
पास फटकने पावे,
हो कुबेर चेरा जो मेरा,
मन मे गर्व न आवे।

सुरगुरु और शारदा जैसा, शिष्य-वृन्द हो मेरा,
तो विरक्त हो समझूँ दुनियाँ, चिडिया रैन-बसेरा।

रहूँ निरक्षर किन्तु निरन्तर,
शील सखा हो मेरा,
समता के अगाध वारिधि मे,
डूबे 'तेरा-मेरा'।

राग-रग से हृत्-पट मेरा, रजित भले बना हो,
पर, सब पर हो राग एक सा, थोडा औ न घना हो।

श्री रामस्वरूप, 'भारतीय'

'भारतीय' जी समाज के पुराने लेखको में से है। प्राय. १० वर्ष पूर्व इनकी रचनायें 'देवेन्द्र' में तथा अन्य जैन-अजैन पत्रो में निकलती थी। यह कर्मशील व्यक्ति है। इनमें समाज-सेवा और देश-सेवा की लगन है; विचार भी मँजे हुए और उदार है।

आपकी कवितायें ओजपूर्ण और शिक्षाप्रद होती है। भाषा में प्रवाह है, और भावो में स्पष्टता। आपकी एक कविता-पुस्तक 'वीर पताका' बहुत पहले श्री 'महेन्द्र' जी ने प्रकाशित कराई थी। आप उर्दू के भी अच्छे लेखक है। उर्दू की पुस्तक, 'पैगामे हमदर्दी' आप ही ने लिखी है।

गतवर्ष भारत-रक्षा-कानून के आधीन जेल-यात्रा कर आये है। जेल में इन्होने अनेक कवितायें और सस्मरण लिखे है, जिन्हें यह यथावसर प्रकाशित करायेंगे।

समाधान

भिन्न भिन्न पुष्पो मे समान गध न होगी,
भिन्न भिन्न मस्तक मे एक उमग न होगी,
कोटि यत्न हो मन-विभिन्नता वद न होगी,
शान्ति न होगी अल्प बुद्धि यदि मद न होगी
सब के मन मे शक्ति है तर्क स्वतत्र विचार की
सब को चिन्ता है लगो अपने शुभ उद्धार की
कुछ ऐसे है जिन्हे जगत से परम प्यार है,
प्राच्य कीर्ति है इष्ट, पुण्य श्रद्धा अपार है,
कुछ ऐसे है जिन्हे समय का रग सवार है,
मन मे साहस है, उमग है, जाति प्यार है,

प्रथम जाति मे ही केरे निज आचार प्रचार को
द्वितीय जान मे है गुँजा वीणा की झकार को
लाख बुरे है, पर अच्छे है—अपने ही है,
इन भावो के बिना सफलता सपने ही है,
सब के प्रकटित भाव आँच पर तपते ही है
अभिमत मिलता नही, न चिता, अपने ही है
जब तक या जातीयता का न चढेगा रग दृढ
हो न सकेगा तब तलक विजय विघ्न का सुदृढ गढ

धर्म-तत्त्व

वही राम मदिर कहलाता जहाँ विराजेगे भगवान,
क्या करीम के ममकन को मसजिद न मानती है कुरआन ?
धन्य भाग्य है, मन मे मदिर, दिल मे है मसजिद प्यारी,
प्रकृति देव ने पुण्य भावना मे की जिसकी तैयारी,
नर ने चूना गारा पत्थर मे कुछ भवन बनाये है,
भव्य भावना की अजलि दे कर भगवान बुलाये है,
नर-निर्मित मदिर मस्जिद स्मृतियाँ है मन मदिर की
वाह्य क्रिया है साधन, वीणा गूँज उठे अभ्यन्तर की,
पडित-मुल्ले भोली, भूली जनता को बहकाते है
नर-नारायण, मन्दिर-मसजिद के मिस प्राण गँवाते है।
अनिल अनल से बढ कर दावानलि बनती है—दूषण है
क्षमा, क्षमाशीलो का गुण है, धर्म मर्म है—भूषण है
बीमारी की तह मे व्यापी बहुमत की बीमारी है
प्रपचियो का प्रचड बल है, भले जनो की ख्वारी है ॥

पंडित अयोध्याप्रसाद गोयलीय

मझोला कद, कसरती देह, गँठे हुए अवयव, भरी हुई सजग, मुखाकृति, खद्दर की पोशाक पर फबती हुई श्वेत गाँधी कैप; चालढाल में फुर्ती, वाणी में ओज, निरालापन और देहली का टकसाली शिष्ट ढग, आकर्षक व्यक्तित्व मे छिपाया हुआ एक भावुक हृदय—जिसमें है एक चिनगारी और है एक आह ! इस प्रकार की रेखाओ में जो चित्र झलकता हुआ दिखाई दे, उससे आप पं० अयोध्याप्रसाद गोयलीय का कुछ अनुमान लगा सकते है । सच बात तो यह है कि जैन समाज में बहुत थोडे लोग ऐसे है जो उन्हे पहले से ही प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप में न जानते हो ।

गोयलीय जी आज २० वर्ष से जैन समाज और जैन साहित्य की गतिविधि मे सक्रिय भाग ले रहे है । उनके सीने की आग आज भी उसी तरह गर्म है । समाज, देश, धर्म और साहित्यसेवा की दीवानगी आज भी २० वर्ष पहिले की तरह बदस्तूर कायम है ।

अपनी सहज कुशाग्र बुद्धि, अध्यवसाय और अनुशीलन के द्वारा उन्होने न्याय, धर्मशास्त्र, इतिहास, हिन्दी, उर्दू और सस्कृत साहित्य में अच्छी गति प्राप्त की है । कथा, कहानी, कविता, नाटक, निबन्ध और प्रचारात्मक साहित्य के वह सृष्टा है । 'दास' उपनाम से लिखी हुई उनकी हिन्दी उर्दू की कविताओ का सग्रह प्रकाशित हो चुका है । और जैन इतिहास, विशेषकर मौर्यकालीन इतिहास के तो वह प्रमाणिक विद्वान है । उर्दू शायरी से इन्हें खास दिलचस्पी है ।

सामाजिक जागृति के क्षेत्र में उन्होने कार्यकर्ताओ को जोशीले गाने और उत्साहपद कवितायें तथा युवको की भावनाओ को सिहनाद का स्वर दिया । उनकी एक जोशीली कविता के चन्द शेर मुलाहज़ा हो ।—

जवानों का जोश

हम वो है मर्द कि मैदान न छोड़ेंगे कभी।
मुँह से जो कह चुके मुँह उससे न मोड़ेंगे कभी॥
तीर से, तेग से, खंजर से, कहीं डरते हैं ?
कस्द[1] जिस बात का कर लेते हैं वोह करते हैं॥
आज जो हमसे जियादा है वोह कल कम होंगे।
जब कमर बाँध के उट्ठेंगे, हम ही हम होंगे॥
नेक और बद मे है क्या फर्क बताने वाले।
जो है गुमराह[2] उन्हें राह पै लाने वाले॥
बेखबर जो थे उन्हे हमने खबरदार किया।
ख्वाबेगफलत[3] मे हरइक शख्श को हुश्यार किया॥
यह तो दावे है, मगर वक्ते अमल[4] जब आए।
घर मे बाहर न कोई आए न मुँह दिखलाए॥
खौफ से बेद[5] की मानिन्द बदन थर्राए।
काम की जिस से कहो वोह ये जबा पै लाए॥
जान से बढ के है, मजहब से मोहब्बत हम को।
क्या करें ? काम से मिलती नही फुरसत हम को॥
लोग क्या कहते है ? मुतलक[6] उन्हे अहसास[7] नही।
आबरू, धर्म दया, का भी जरा पास नही॥
जिससे तस्वीर की शोभा बढे वोह रंग बनो।
दिल मे गैरत है अगर 'दास' तो अकलक बनो॥

---

[1] प्रण। [2] भूला भटका। [3] स्वप्न। [4] काम करने का समय [5] बेंत। [6] कुछ। [7] लगाव।

श्री पं० अजित प्रसादजी

श्री पण्डित अजितप्रसाद जी का जन्म सन् १८७४ में हुआ। आपने सन् १८९५ में एम० ए०, एल-एल० बी० की उपाधि प्राप्त करके वकालत प्रारम्भ की थी। आप कई वर्षों तक सरकारी वकील और बाद में बीकानेर हाईकोर्ट के जज रह चुके हैं।

आप स्याद्वाद महाविद्यालय, ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम, सुमेरचन्द जैन होस्टेल, जैनसिद्धान्त-भवन और दिगम्बर जैनपरिषद् के सस्थापन में उत्साही पदाधिकारी के रूप में सम्मिलित रहे हैं।

आप सन् १९१२ से अंग्रेजी जैनगजट के सम्पादक और १९२६ से सैन्ट्रल जैन पब्लिशिग हाउस, लखनऊ, के सञ्चालक हैं, जहाँ से ११ सिद्धान्त ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

श्री अजितप्रसाद जी कविरूप से विख्यात नही हैं। विशेष अवसरो पर मित्रो के अनुरोध से कुछ लिख देते हैं। लेकिन जो कुछ लिखते हैं उसमें कुछ पद-लालित्य और विशेष अर्थ गम्भीरता होती है। आपने प्राय सेहरे लिखे हैं।

उनकी उर्दू-हिन्दी मिश्रित एक धार्मिक रचना के कुछ अश यहाँ दिये जा रहे हैं। दूसरी कविता 'यह बहार' उर्दू-शैली की सुन्दर रचना है, जो एक सेहरे का अश है।

धर्म का मर्म

भगवन ! मुझे रास्ता बता दे,
ज्योति टुक ज्ञान की दिखा दे,
चिरकाल से बुद्धि पर है परदा—
जल्दी गुरुदेव वह हटा दे।
कर्मों ने किया खराब-खस्ता,
चरणों मे पडा हूँ दस्त बस्ता,
बेखुद मे खुदी मे हो रहा हूँ,
परमात्मा हूँ, पै सो रहा हू।
इस नीद की आदि तो नही है,
पर अन्त है इसका यह सही है,
पत्थर मे छिपी है आत्म ज्योति,
पाषाण मे अग्नि पैदा होती,
फूलो मे खिली है आत्म ज्योति,
वृक्षो मे फली है आत्म ज्योति
अज्ञान का बस पडा है ताला,
ज्ञानी ने है उसे तोड डाला,
चारित्र से रास्ता सुगम है,
चलना न बहुत है, बल्कि कम है।
आगम ने जो मुझको सिखाया,
है मैने यहाँ वह कह सुनाया,
गुरुदेव से जो मिला है परसाद,
देता है वही 'अजित परसाद'।

यह बहार !

फस्ल-ए-बहार आती है हर साल नित नई !
दिखलाती है बहार वह हर साल नित नई ॥
पर अब की साल की तो अनोखी ही शान है ।
देखी कभी न पहिले वह अब आन बान है ॥
जाडे ने खूब लुत्फ दिखाया था ठड का ।
अकडा था ऐसा था न ठिकाना घमण्ड का ॥
मग्रेजा किटकिटा रहा बन थर थरा रहा ।
पारा सुकड के तीस से नीचे था आ रहा ॥
अगारा राख मे था मुँह अपना छिपा रहा ।
चेहरे पै आफताब के परदा सा छा रहा ॥
आते ही बस वसन्त के नक्शा बदल गया ।
बस अन्त जाडे का हुआ उसका अमल गया ॥
आँखो मे सब की रग समाया वसन्त का ।
साफा वसन्ती और दुपट्टा वसन्त का ॥

× × ×

दूल्हा दुल्हन की जोडी विधाता ने जोडी है ।
दोनो है बे-मिसाल क्या यह बात थोडी है ।
जब तक जमी फलक रहे जोडी बनी रहे ।
बन्ने बनी मे खूब मोहब्बत बनी रहे ॥

(एक विवाहोत्सव पर पठित)

श्री कामता प्रसाद जैन

आप अलीगंज (एटा) के रहनेवाले हैं और जैन इतिहास के प्रामाणिक विद्वान और सुलेखक हैं। आपका साहित्यिक जीवन स्व० श्री ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी की प्रेरणा से 'भगवान महावीर' नामक पुस्तक की रचना से प्रारम्भ हुआ। आपने जैन-इतिहास को ५ भागो में लिखा है, जिसमें ३ भाग 'सक्षिप्त जैन-इतिहास' के नामसे भा० दि० जैन परिषद् के प्रकाशन विभाग से प्रकाशित हो चुके हैं।

आपने हिन्दी मे लगभग ३० पुस्तकें लिखी है जिनमें से कुछ का अनुवाद गुजराती, मराठी और कनडी भाषाओ में हो चुका है। अग्रेजी में भी दो तीन पुस्तकें लिखी है। आप 'जैन सिद्धान्त भास्कर' के सम्पादक हैं और दि० जैन परिषद् के मुख-पत्र 'वीर' का तो उसके जन्म काल से ही सम्पादन कर रहे हैं।

श्री कामताप्रसाद जी 'कवि' की अपेक्षा कविता को प्रेरणा देनेवाले साहित्यिक अधिक हैं। आपने 'वीर' द्वारा अनेक लेखको और कवियो को प्रोत्साहन दिया है। आपने कविताबद्ध जैन-कथाये भी लिखी है। इन्होने बृहद् स्वयभू स्तोत्र का पद्यानुवाद किया है। आप लिखते हैं— 'काव्य दृष्टि से शायद इन रचनाओ को महत्त्व नही दिया जा सकता परन्तु वह मेरी मनस्तुष्टि के योग्य तो है ही'।

वीर-प्रोत्साहन

अब उठो उठो हे तरुण वीर,
कर दो जग को तुम अभय वीर !!

वह देखो, नव ऋतुराज साज, नव तरु विकसित पल्लव पराग।
जीवन-जागृति-ज्योती-अपार चमके अब जग के द्वार द्वार !

अब जगो जगो तुम धीर वीर !

प्राची दिश के तुम तेज राशि, भर दो जग मे तुम नव प्रकाश।
कर दो दुख बर्बरता विनाश, थिरके जिस घट घट मे उल्लास ॥

अब बढो बढो साहस गभीर !

हे राम-वीर-बुद्ध की सतान, हे चन्द्रगुप्त-गौरव-वितान।
राणा प्रताप की अतुल शान, बन जाओ अब तुम विश्व-त्राण ॥

अब हरो हरो दुख दर्द पीर !

कर दृढ असि गह कर करुण वार, कर निर्वैर युद्ध निर् अहकार !
आगया शत्रु अब देख द्वार ! प्रलयकर मद कर क्षार क्षार ॥

अब चलो चलो तुम रण सुधीर !
अब उठो उठो हे तरुण वीर !

पं० परमेष्ठीदास जी, 'न्यायतीर्थ'

आप जैन समाज के युवक-हृदय गम्भीर विद्वानो में से है। आपने जैन-दर्शन और जैन-साहित्य के मनन के साथ साथ हिन्दी भाषा के प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य का गहन अध्ययन किया है। प० परमेष्ठीदास जी की प्रतिभा समालोचना के क्षेत्र में विशेष रूप से सजग और सफल है। आपने जैनशास्त्रो का मौलिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया है, और निर्भीकता से उसका प्रतिपादन किया है। इनके विचार उग्र है और इनका जीवन सदा कर्तव्य-रत है। समाज-सुधार और देशोन्नति के लिए आप और आपकी धर्मपत्नी, सौ० कमलादेवी 'राष्ट्रभाषा कोविद', जो हिन्दी की सुकवियित्री है, अपना जीवन अर्पण किये हुए है। यह दम्पति स्वदेश-आन्दोलन में जेल-यात्रा कर आये है।

आपकी लिखी हुई पुस्तको 'विजातीय विवाह मीमासा', 'सुधर्म श्रवकाचार', 'दान-विचार समीक्षा' और 'जैनधर्म की उदारता, आदि ने अनेक विषयो पर मौलिक प्रकाश डालकर समाज के विद्वानो को नये चिन्तन और मनन की सामग्री दी है। आप जैनधर्म को ऐसे व्यापक रूप में देखते है और उसे युक्ति तथा आगम मे इस प्रकार प्रमाणित करते है कि वह मानव-धर्म के रूप मे प्रतिष्ठित हो जाता है।

आपका एक कविता-सग्रह 'परमेष्ठी पद्यावलि' नाम से छपा है। आपकी रचनाये जनता और वर्ग में धार्मिक भावनायें और सामाजिक सुधार प्रोत्साहित करने के लिए अच्छा साधन बनी है। साहित्यिक मूल्य की अपेक्षा उनका सामाजिक मूल्य अधिक है।

महावीर-सन्देश

धर्म वही जो सब जीवो को, भव से पार लगाता हो,
कलह द्वेष मात्सर्य भाव को, कोसो दूर भगाता हो ॥
जो सबको स्वतत्र होने का, सच्चा मार्ग बताता हो।
जिसका आश्रय लेकर प्राणी, सुख समृद्धि को पाता हो ॥
जहाँ वर्ण मे सदाचार पर, अधिक दिया जाता हो जोर।
तर जाते हो जिसके कारण, यमपालादिक अजन चोर,
जहाँ जाति का गर्व न होवे, और न हो थोथा अभिमान।
वही धर्म है मनुज मात्र का, हो जिसमे अधिकार समान ॥
नर नारी पशु पक्षी का हित, जिसमे सोचा जाता हो,
दीन हीन पतितो को भी, जो हर्ष सहित अपनाता हो।
ऐसे व्यापक जैन धर्म से, परिचित हो सारा ससार।
धर्म अशुद्ध नही होता है, खुला रहे यदि इसका द्वार ॥
धर्म पतित पावन है अपना, निश दिन ऐसा गाते हो।
किन्तु बडा आश्चर्य आप फिर, क्यो इतना सकुचाते हो ॥
प्रेम भाव जग मे फैला दो, करो सत्य का नित व्यवहार।
दुरभिमान को त्याग अहिसक, बनो यही जीवन का सार ॥
बन उदार अब त्याग धर्म, फैला दो अपना देश विदेश।
"दाम" इसे तुम भूल न जाना, ये है यह महावीर-सन्देश ॥

प्रगति प्रेरक

श्री कल्याण कुमार, 'शशि'

कविता के नये युग म जिन कवि-हृदयो ने समाज में प्रगति को प्रेरणा दी, उनमें युवक कवि श्री कल्याणकुमार जी 'शशि' निःसन्देह प्रधान है। आज लगभग १५ वर्ष से 'शशि' जी काव्य-साधना कर रहे है और उनकी प्रतिभा उत्तरोत्तर विकास की ओर उन्मुख है। उन्हें आप कोई सा विषय दीजिये, वह अपनी भावुक कल्पना द्वारा सहज काव्य-सृष्टि करके उस विषय को चमका देंगे। कवि का कार्य समाज के जीवन में प्रवेश करके उसको साथ लेकर, उसे आगे बढ़ाना होता है। 'शशि' ने उत्सवो के लिए धार्मिक पद रचे, झंडे के लिए गीत बनाये, महापुरुषो की जीवनी पर भावपूर्ण कवितायें लिखीं और समाज के नये भावो को नई वाणी दी।

अब वह कई पग आगे बढ गये है। आज उनके गीतो में विश्व का आकुल अन्तर् बोल रहा है। वह कल्पना को उत्तेजित कर, अलङ्कार की सृष्टि नही करते; आज तो उनका हृदय वर्त्तमान को देखकर ही भावाकुल हो उठता है। वह अपनी नैसर्गिक प्रतिभा के बलपर भावो को गीत-बद्ध कर देते है। हाँ, वह भाषा का लालित्य और भावो की सुकुमारता जागरण के बज्रघोषी गीत में भी क़ायम रख सकते है।

जब हमने 'शशि' से प्रामाणिक परिचय माँगा, तो लिख भेजा—

"मेरा परिचय कुछ नही है। मार्च १९१२ का जन्म है। व्यापार करता हूँ—गरीब आदमी हूँ, बस यही!"

यह 'गरीब आदमी' कविता के जगत में आज सारी समृद्ध जैन-समाज की निधि है

श्री कल्याणकुमार 'शशि' ने जैन-महिलाओ की कविताओ का सुन्दर सग्रह 'पखुरियाँ' नाम से प्रकाशित किया है। आपकी अनेक स्फुट रचनायें पुस्तकाकार छप चुकी है। आप रामपुर (रियासत) में व्यापार-कार्य करते है।

रणचण्डी !

जागो, जग कर आज गान—
हे कवि-वाणी ! कुछ गाओ ।

अग्नि-युद्ध मे हा ! धू-धू कर मानव जलता ,
छाई रोम-रोम मे दुनियाँ के व्याकुलता ,
बढा आ रहा बुद्धिवाद मानव को दलता ,
बहुत हुआ, अब यह भीषण-पट
परिवर्त्तन कर जाओ ।

नाच रही है उच्छृंखल रक्तिम रण-चडी ,
लाल रक्त मे लथपथ वन, उपवन, पग-डडी ,
बीहड मे जयकेतु उडा खुश युद्ध घमडी
दानवता का गर्व चूर कर
इसमे मानव लाओ ।

केवल मेरी सत्ता की माया मरीचिका ,
उगा रही है पग-पग पर भीषण विभीषिका ,
प्यासा यह नर-यक्ष, भयकर रक्त भीषिका
इसे रक्त की जगह रक्ष का
प्रेम-पियूष पिलाओ ।

विश्रुत-जीवन !

नई लहर ने बदल दिया है,
मेरा सञ्चित जीवन,
नए रूप में नए रंग में
हुआ पल्लवित मधुबन,
अभिमंडित हो उठा आज
विश्रुत जीवन का कण कण,
यह अभिद्ध है, किस भविष्य पर
दौड़ रहा यह क्षण क्षण।
उर कहता है, कुछ खोया है,
मन कहता है पाया,
उद्वेलित कर रही नित्य यह
उभय पक्ष की माया।
विश्व और, मैं और हुआ
क्या देख रहा हूँ सपना ?
अह ! यह लो निमेष में ही
सब बदल गया जग अपना।

नील रात्रि

नूतन जग, नूतन आसमान
ऐसा हो नव निर्माण प्राण !
हम स्वप्न नहीं परिवर्तित नित
क्यों विश्व भीति पर फिर चित्रित
मानवता में जो पूर्ण विहित
पाए महान् !

झंकृत वीणा से अबल दीन,
वीणा कर हो अब क्यों न लीन,
प्रतिघात गुँजा दे जो नवीन
चिर विश्व प्राण !

हो अमृत मृत्यु नव जन्म धात्रि,
हम नूतन जग के सजग यात्रि,
फिर भेद विश्व की नील रात्रि
खोले विहान !

गीत

लय गीत मधुर, लय गीत मधुर !
हे, हे कवि ! तेरी मदिर ताल,
झंकृत वीणा की ध्वनि विशाल,
मैं सुनकर आज हुआ निहाल,
हाँ, हाँ, फिर गादे एक बार
वह गीत प्रचुर !

सन्निहित जगत का उदय अस्त,
तेरी वह मादक ध्वनि प्रशस्त,
मेरा जगम जग अस्त-व्यस्त,
बन कर स्वर लहरी मचल उठे
फिर वह आतुर !

हो पुन तरगित गीत रम्य,
अपवाद आज फिर हो अगम्य,
हो अन्त रहित यह तारतम्य
बीहड मे कुछ लहलहा उठे—
बन प्रेमाँकुर !

ले मिला मिलाया सफल साज,
चिर लहरी गूँजे पुन आज,
निर्माण नया हो स्वप्नराज,
हो आलोकित मेरा निशान्त
जग अत पुर !

गायन सी हो गुजायमान,
छा जाये नभ पर बन अम्लान,
थिरके चचल हो सुप्त प्राण,
गत् वर्तमान जोडे भविष्य को
बन लय-सुर !

अह ! छेड रहा है मुझे कौन !
लय भग हो गया यदपि तौ, न
मुखरित होगा मन्दायु मौन,
रे ! अभी भविष्यत और शेष है
बन न निठुर !

बस ! बन्द करो अस्थिर निनाद,
ले लो तुम यह चिर आल्हाद,
मैं लँगा मादकता प्रसाद,
मैं अमर हुआ, गत हुआ—
नाद यह क्षण भंगुर !

जो मरम प्रेम से रहा सींच,
उसको मेरे कर से न खींच,
अवलोक रहा हूँ नेत्र मींच,
मैं अन्तर्हित हूँ दृश्यमान
छबि म्लान मुकुर !

हाँ, अब चमका मेरे समीप,
वह प्राणमयी निर्माण दीप,
मैं हुआ अजर जग का महीप
अब कुछ न कहूँगा राग भंग कर
सुकवि ! चतुर !

शत् शत् शताब्दियों का श्मशान,
हो उठा आज फिर मूर्त्तिमान,
लुट चला विश्व में प्रेम दान,
लय खेद हुआ, गत भेद हुए
किन्नर, नर, सुर !

श्री भगवत् स्वरूप, 'भगवत्'

साहित्य के आकाश में इस नक्षत्र का उदय अभी कुछ वर्ष पहले ही हुआ है, पर आते ही इसने जनता की दृष्टि अपनी ओर खीच ली, क्योकि इस नक्षत्र में अनुपम प्रकाश है, ज्वाला है और साथ ही है एक अपूर्व स्निग्धता !

'भगवत्' जी कवि है, कहानी-लेखक है और नाटक-कार है—खूबी यह कि जो कुछ लिखते है प्रायः बहुत ही सुन्दर होता है । आपकी कविता नितान्त आधुनिक ढग की है—वह युग से उत्पन्न हुई है और युग को प्रतिध्वनित करती है । वर्त्तमान मानव-समाज का ढाँचा जिन आर्थिक और सामाजिक सिद्धान्तो पर खडा हुआ है, वह जन-समूह के लिए निरन्तर सकट और सघर्ष की वस्तु बने हुए है । आज का कवि सघर्ष से जूझ रहा है । 'भगवत्' अपनी कविता मे उसी संघर्ष का प्रतिनिधित्व करके हमारी सामाजिक चेतना-धारा को विश्व-व्यापी मानव-चेतना की महाधारा से जोडने का प्रयत्न कर रहे है । वह कहते है.—

"कर्मक्षेत्र में उतर रहा हूँ, लेकर यह अभिलाषा
समझ सके सगठन शक्ति की, जनता अब परिभाषा'

आपकी भाषा बहुत ही स्वाभाविक होती है । नाटको में आप विशेष रूप से ऐसी भाषा का प्रयोग करते है जो आम लोगो की समझ में आ जाये ।

अब तक आपकी निम्नलिखित रचनायें प्रकाशित हो चुकी है—

उस दिन (कहानियाँ), सन्यासी (नाटक), चाँदनी (कविता सग्रह) समाज की आग (नाटक), घूँघट (प्रहसन), घर वाली (व्यङ्ग काव्य) भाग्य (नाटक), रसभरी (कहानियाँ), आत्मतेज (स्वामी समन्तभद्र), त्रिशलानन्दन, जय महावीर, फल फूल, झनकार, उपवन—अन्तिम पाँचो गीत है ।

आत्म-प्रश्न

मैं हूँ कौन कहाँ से आया ?
महाशोक है, मानव कहलाकर भी इतना जान न पाया !

स्वर्ण छोड पीतल पर रीझा,
सुधा त्याग चाखा हालाहल !
चला वासनाओ के पथ पर,
मेरा भरमाया अन्तस्तल !!
सच्चे सुख का स्वप्न न देखा, दुख पर रहा सदा ललचाया !

अपने भले बुरे की मैंने
समालोचना भी कब की है ?
आत्मिक निर्बलता भी मुझको,
नही कभी मन मे अखरी है !
'जीवन' भला रहा, मृत्यु को अविवेकी हो कर अपनाया !

काश ! टूट जाता भीतर से
मोह और माया का नाता !
तो अपने सुख-दुख का मैं था,
उत्तर-दाता भाग्य विधाता !
किन्तु गुलामी ने है मुझको, ऐसा गहरा नशा पिलाया !

एक-एक कर चले जा रहे—
दिन जीवन को हँसा रुला कर !
विघ्न बादलो मे लिपटा है
इधर मृतक सा ज्ञान-दिवाकर !!
सूझ न पडता अधकार मे, क्या अपना है कौन पराया !

सुख शान्ति चाहता है मानव

पीडा की गोदी मे सोया,
खेला दिल के अरमानो से।
विहँसा तो हा हाकारो मे,
रूठा तो अपने प्राणो मे ॥
आध्यात्मिक पथ पर बढने को
अब क्रान्ति चाहता है मानव ।। सुख० ।
सब देख चुका नाते रिश्ते,
अपने को भी देखा परखा
सुख के साथी सब दीख पडे
दुख मे न कोई बन सका सखा
दुनियाँ के दुख मे दूर कही
एकान्त चाहता है मानव ।। सुख० ।
प्रोत्साहन के दो शब्द मिले
आशीष मिले स-करुण मन की
प्राणो मे जागे नए प्राण
भर दे जो लहर जागरण की
जीनव रहस्य समझा दे वह—
दृष्टान्त चाहता है मानव ।। सुख० ।
जीए तो जीए ठीक तरह
मुर्दापन लेकर लजे नही
मानव कहलाकर दीन न हो
औ मानवता को तजे नही
इस पर भी आ बनती है तब
प्राणान्त चाहता है मानव ॥
सुख शान्ति चाहता है मानव ॥

मुझे न कविता लिखना आता ।

मुझे न कविता लिखना आता ।
जो कुछ भी लिखता हूँ उसमें केवल अपना मन बहलाता ।।

मुझे न कविता लिखना आता ।
कवि होने के लिए चाहिये जीवन में कुछ लापरवाही ।
घनी हो रही मेरे उर में चिताओं की काली स्याही ।।
अतः कहो मुझ दुखियारे से क्या कोमल कविता का नाता

मुझे न कविता लिखना आता ।
प्रखर दृष्टि कवि की होती है प्रकृति उसे प्यारी लगती है ।
पाता है आनन्द शून्य में क्यों कि वहाँ प्रतिभा जगती है ।।
हा-हाकारों का मैं बन्दी क्षण भर को भी चैन न पाता

मुझे न कविता लिखना आता ।
धुंधले दीपक के प्रकाश में लिखी गई मेरी कविताएँ ।
क्या प्रकाश देगी जनता को इसको जरा ध्यान में लाएँ ।
मैं इन सब को सोच सोच कर मन में हूँ निराश हो जाता ।

मुझे न कविता लिखना आता ।
कविता क्या है अब तक मैंने इसे न अपने गले उतारा ।
विमुख दिशा की ओर बह रही है मेरे जीवन की धारा ।।
किन्तु प्रेम कुछ कविता से है अतः उसे जीवन में लाता ।
मुझे न कविता लिखना आता ।

एक प्रश्न

क्यो दुनियाँ दुख मे डरती है ?

दुख मे ऐसी क्या पीडा है, जो उसकी दृढता हरती है ?

है कौन सगे, है कौन गैर, कितने, क्या हाथ बटाते है ?

सुख मे सब तो अपने ही है दुख मे पहिचाने जाते है !

'अपने' 'पर' की यह बात सदा, दुख मे ही गले उतरती है !

क्यो दुनियाँ दुख से डरती है ?

दुख मे ऐसा है महामत्र, जो ला देता है सीधा पन !

सारे विकार, सारे विरोध तज, प्राणी करता प्रभु-सुमिरन !

हर साँस नाम प्रभु का लेती, भूल भी नही बिसरती है !

क्यो दुनियाँ दुख से डरती है ?

दुनियावी सारे बडे ऐब, दुखिया को नही सताते है,

सुख मे डूबे इन्सानो को बेशक हैवान बनाते है,

दुख सिखलाती है मानवता, जो हित दुनियाँ का करती है !

क्यो दुनियाँ दुख से डरती है ?

पतझड के पीछे है वसन्त, रजनी के बाद सवेरा है,

यह अटल नियम है—उद्यम के उपरान्त सदैव बसेरा है,

दुख जाने पर सुख आएगा, सुख दुख दोनो की धरती है।

क्यो दुनियाँ दुख से डरती है ?

श्री लक्ष्मीचन्द्र एम० ए०

आप अंग्रेजी और संस्कृत, दोनो विषयो के, एम० ए० हैं। इन्हें साहित्य के प्रायः सभी युगो और क्षेत्रो से परिचय है और संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी उर्दू और बँगला साहित्य के आलोचनात्मक अध्ययन में विशेष रुचि है।

इनके हिन्दी और इंगलिश के गद्यलेख भाषा, भाव और शैली में बहुत सुन्दर होते हैं। आप जब देहली और लाहौर में थे तो ऑल इन्डिया रेडियो से आपके भाषण साहित्यिक आलोचनायें और कवितायें प्रायः ब्रौडकास्ट होती रहती थी।

आपके कवि-जीवन का परिचय श्री कल्याणकुमार 'शशि' के शब्दो में इस प्रकार है--

"आप समाज के ही नही, वरन् देश के उभरते हुए उज्ज्वल नक्षत्र हैं। आप बहुत ही सरल स्वभावी और मौन प्रकृति के जीव हैं, तथा पत्रो में नही के बराबर लिखते हैं। इसलिए सुदूर वनस्थली के सुकोमल नीड़ो में गुजरित होती हुई, हृदय को नचा-नचा देनेवाली कोयल की कूक सुनने को नही मिलती। आप अपने विषय के चित्र में प्रतिभा की बडी बारीक कूँची से रग भरते हैं। आपकी कविता में 'पन्त' जैसी कोमलता का दिग्दर्शन मिलता है। सम्भवत किसी कविता में तो इन्होने प्रकृति की आत्मा से साक्षात्कार करके उसका वर्णन किया है।"

पहले आप लाहौर में भारत इन्श्योरेंस कम्पनी के पब्लिसिटी ऑफिसर और अंग्रेजी पत्र 'भारत मैग्जीन' के सम्पादक थे। आजकल आप डालमिया नगर में दानवीर साहू शान्तिप्रसाद जी के सैक्रेटरी और डालमियाँ-जैन ट्रस्ट के मन्त्री के पद पर हैं। आपकी धर्मपत्नी श्री कुन्थकुमारी जैन बी० ए० (ऑनर्स) बी० टी० सुसंस्कृत और प्रतिभासम्पन्न आदर्श महिला हैं।

कोई क्या जाने कोई क्या समझे ?

प्रेमी के प्रीति-पगे मन को
कोई क्या जाने कोई क्या समझे !
भावुक कवि के पागलपन को
कोई क्या जाने कोई क्या समझे !

उन्मत्त हृदय की थिरकन को,
नत-मुख के अधर प्रकम्पन को,
नयनो के मूक निमत्रण को
कोई क्या जाने कोई क्या समझे !

अति कुटिल गरल मे बुझी हुई,
अति सरल, सुधा से सीची-सी
मदभरी अनोखी चितवन को,
कोई क्या जाने कोई क्या समझे !

रे कीट ! ज्योति का इक चुम्बन,
और उस पर प्राणो की बाजी ?
तेर इस आत्म-विसर्जन को,
कोई क्या जाने कोई क्या समझे !

सुख-दुख की आँख-मिचौनी को,
नर की होनी-अनहोनी को,
इस स्वप्न-मरीचे जीवन को
कोई क्या जाने कोई क्या समझे !

'कुहू-कुहू' फिर कोयल बोली !

मन्द समीरण के पखो पर—
बैठ, उडे उसके आतुर स्वर,
विकल हुआ तरु-तरु पर मर्मर,
मजरियो के स्वप्न मधुर-नर,
भग हुए, जब शाखा डोली। 'कुहूकुहू०' !

उर मे अमिट पिपासा लेकर,
घूम रहा अति आकुल-आतुर,
कली-कली के द्वार-द्वार पर—
रीते अधरो, रोता मधुकर,
गान समझती दुनिया भोली ! कुहूकुहू० !

छाई कूक अवनि अम्बर पर,
उठी हूक सी, गरजा सागर,
द्रवित हुये गिरि-पाहन के उर,
नि श्वासो से निकले निर्झर
विकल व्यथा ने पलके खोली। कुहूकुहू० !

उर मे किसकी याद छिपा कर,
रोती है तू कर ऊँचा स्वर,
मचल उठा क्यो मेरा अन्तर ?
इन आँखो मे पा नव निर्झर,
तूने उर की पीडा घोली !
'कुहू कुहू' फिर कोयल बोली।

मैं पतझर की सूखी डाली !

चौराहे पर पाँव जमाये, भूतो सा ककाल बनाये ,
सूखा पेड खडा मुँह बाये, जो लबी बाहे फैलाये—
मै उसकी हूँ उँगली काली ,
मै पतझर की सूखी डाली !

झर-झर कर फल-पत्ते छूटे, लुटा रूप रस पछी रूठे
युग-युग के गँठ-बधन टूटे, बिन अपराध भाग क्यो फूटे ?
सूखे तन, भूखे मन वाली ,
मै पतझर की सूखी डाली !

फैला केश रात जब रोती, नभ की छाती धक-धक होती
सन्नाटे मे दुनियाँ सोती, मै उल्लू का बोझा ढोती ,
वह गाता, मै देती ताली
मै पतझर की सूखी डाली !

जो जग की बातो पर जाऊँ, एक साँस मे ही मर जाऊँ ,
मै न किन्तु वह, जो डर खाऊँ, जीवन के नूतन स्वर गाऊँ—
अजर, अमर, मै आशा वाली
मै पतझर की सूखी डाली !

पतझर कितने दिन का भाई ? सुनो, पवन सदेशा लाई
अम्बर पर छाई अरुणाई, लो, वसन्त की ऊषा आई !
भूलेगा न मुझे बन-माली
नही रखेगा सूखी डाली

सजनि ! आँसू लोगी या हास ?

नील अचल मे छिप चुप-चाप,
वियोगी तारे तकते राह,
निराशा का पा अतिम ताप,
बरस जाती आँसूबन 'चाह' !
कली की बुझती इस से प्यास
सजनि ! आँसू अच्छे या हास ?

कनक-कर मे फैला उल्लास,
झूमती मलयानिल मे झूल,
चूमती जब ऊषा सविलास—
मुस्करा उठते सोये फूल !
धरा पर छा जाता मधुमास,
सजनि, कितना मादक है हास !

'मिलन' हँस-हँस बिखराता फूल,
'विदा' रो पोती मोती-माल,
सुमन मे दोनो के है शूल,
मुझे दोनो पर आता प्यार !
भेट-हित दो ही निधि है पास,
सजनि आँसू लोगी या हास ?

श्री शान्ति स्वरूप, 'कुसुम'

श्री शान्तिस्वरूप 'कुसुम' को काव्य-रचना के लिए जन्म-जात प्रतिभा मिली है। आपका जन्म १५ अक्तूबर सन् १९२४ को धनोरा (मेरठ) में हुआ। आपने हाई स्कूल तक ही शिक्षा प्राप्त की है, और आजकल सहारनपुर में इम्पीरियल बैंक में खजाञ्ची है।

आपको हिन्दी साहित्य से बचपन से ही अनुराग रहा है और स्वत स्फूर्ति से प्रेरित होकर आपने कविता-रचना प्रारम्भ की है। थोडे ही समय में आपने इस दिशामें बहुत उन्नति कर ली है और भविष्य में आप नि सन्देह हिन्दी कवि-समाज में विशेष गौरव और आदर का स्थान प्राप्त कर सकेंगे।

आपके गीतो में उच्च कला, सफल सौन्दर्य और अभिनव सरसता के दर्शन होते हैं। इनकी कविता में प्रवाह होता है जो इस बात का प्रमाण है कि कविता और कविता की शब्द-योजना हृदय के स्पन्दन से उत्पन्न हुई है और निर्झर की तरह अकृत्रिम धारा के रूप में बह रही है।

'कुसुम' का भावुक हृदय, वेदना के हल्के से आघात से भी झनझना उठता है; पर, शायद वह निराशावादी नही है।

भविष्य में प्रगति को जो वाञ्छनीय रूप लेना है उसके प्रति 'कुसुम'-जैसे उठते हुए कवि-कलाकारो का विशेष उत्तरदायित्व है।

हिन्दी साहित्य को श्री शान्ति स्वरूप, 'कुसुम' से भविष्य में बहुत आशायें है।

कलिका के प्रति

हो कितनी सुकुमार सलौनी, कलिके ! प्रेम सनी सी ।
अन्तर में रंग भरे अनूठा, जीवन ज्योति धनी सी ।।

इन मादक घड़ियों में अपने, यौवन में सकुचाती ।
कुछ-कुछ खिलती सी जाती हो, अवनत नयन लजाती ।।
मृदु चितवन से आकर्षित हो, अति युवकों ने देखा ।
मधुर रंगीली सी आँखों में उन्मादक सी रेखा ।।

यौवन के स्वर्णिम से युग में, यह कोमल सी काया ।
तैर रही जीवन सागर में बनकर मोहक माया ।।
पर पंखुरियों के समीप तर, इन शूलों का रहना ।
खटक रहा प्रति पल सुन्दरि ! सचमुच ही तू सच कहना ।।

इन अलियों के मोह जाल में तनिक न तुम फँस जाना ।
लोलुप मधु के मधुर प्रेम का, केवल सजनि ! बहाना ।।
इनकी प्रीति क्षणिक है पगली ! सरस देख आ जाते ।
रस रहते तक मौज उड़ाते, नीरस कर, उड़ जाते ।।

मैं भी कभी कली थी सुन्दर, यों ही मुसकाती थी ।
शैशव के मद भरे प्रात में, मञ्जु गीत गाती थी ।।
आती थी मलिआनिल मुझ में, दुख भर भर जाती थी ।
उषा अरुणिमा देती, सन्ध्या, दुख भर ले जाती थी ।।

तब इन मधुपों ने आ मुझको, प्रीत का गीत सुनाया।
प्रेम डोर के बन्धन में कस, अपना जाल बिछाया॥

लूटी मधुमय मधु ऋतु मेरी, छलनी हृदय किया है।
जीवन में मन मौज के बदले, कितना दर्द दिया है॥

मुझ पर से अब तुमपर जा, तुमसे जा और किसी पर।
या ही उड़ जायगे हँस कर, अपनी मनमानी कर॥

निष्ठुर जग की रीति यही है, "सुख" में साथी बनना।
सुख रहने तक साथ निभाना, दुख में छोड़ बिछुड़ना॥

यौवन दीप बुझा कर तेरा, स्वार्थ भर न भोरे।
तुझे चिढ़ाकर झूम उठेंगे, ले ले पवन झकोरे॥

वासन्ती की मधु छाया में, सुमुखि! प्रेम से झूलो।
रस बरसाती रहो निरन्तर, मुक्त पवन में फूलो॥

शल तुम्हारे जीवन साथी, इनसे नेह लगाओ।
इन काले-काले भौंरों को काँटे चुभा उड़ाओ॥

कुछ भी न समझ पाता हूं मैं, जग की या मेरी ग़लती है।

मैंने न पाप कुछ भी जाना, मैंने न पुण्य कभी माना।
मैं हूँ वह जिसको पाप पुण्य, कहते सब केवल दीवाना॥

मैं सुख भोगूँ या दुख भोगूँ दुनिया क्या जहर उगलती है।
कुछ भी न समझ पाता हूँ मैं जग की या मेरी गलती है॥

मैं पथ पुराना छोड़ चुका, मर्यादा बन्धन तोड़ चुका।
दुनिया से तो रिश्ता ही क्या, अपनों से भी मुँह मोड़ चुका॥

फिर क्रूर निगाहें रह रह कर, क्यों मेरे भाव मसलती है ?
कुछ भी न समझ पाता हूँ मैं, जग की या मेरी गलती है ॥
अब एक निराला जीव बना, जीवन में कहीं न उलझन है।
मैं हूँ मदिरा है, साकी है, साकी बाला की रुनझुन है ॥
मैं सबसे खुश हूँ दुनिया को, मेरी सत्ता क्यों खलती है ?
कुछ भी न समझ पाता हूँ मैं, जग की या मेरी गलती है ॥
दो दिन ही का तो मेला है फिर जाता पथिक अकेला है।
यह नश्वर धन दौलत पाकर, रे ! कौन न हँस-खुश खेला है ॥
यदि मैं भी हँस लूँ तो जग की, दृष्टी क्यों रंग बदलती है ?
कुछ भी न समझ पाता हूँ मैं जग की या मेरी गलती है ॥
मैं प्रेम नगर में रहता हूँ, सुख के सागर में बहता हूँ।
सबकी ही सुनता जाता हूँ, अपनी न किसीसे कहता हूँ ॥
तो भी ये दुनिया की बातें, क्यों रह-रह मुझपर ढलती है ?
कुछ भी न समझ पाता हूँ मैं, जग की या मेरी गलती है ॥
कोई कहता तू मार्ग-भ्रष्ट, होकर पाता क्यों अग्नि कष्ट।
पापों से रँगा हुआ पगले, तेरे जीवन का पृष्ट-पृष्ट ॥
मैंने न कभी पथ पूछा फिर, इनकी क्यों जिह्वा चलती है ?
कुछ भी न समझ पाता हूँ मैं, जग की या मेरी गलती है ॥
मैं विद्रोही हूँ, बागी हूँ, अनुराग लिये वैरागी हूँ।
जिसका न कभी स्वर विकृत हो, मैं ऐसा अद्भुत रागी हूँ ॥
फिर मेरे निकले रागों से क्यों दुनिया मुझको छलती है ?
कुछ भी न समझ पाता हूँ मैं, जग की या मेरी गलती है ॥

श्री कपूर चन्द, 'इन्दु'

श्री कपूरचन्द 'इन्दु' सम्भवतया कई वर्ष पहले से कविता लिख रहे है, किन्तु इधर हाल में ही जो उनकी कवितायें पत्रो में प्रकाशित हुई है, उनसे 'इन्दु' जी की प्रतिभा के विषय मे बहुत अच्छी धारणा बन जाती है।

आपकी कविताओ का केन्द्रवर्ती दार्शनिक भाव अभिनव शब्द-व्यञ्जना के द्वारा जब व्यक्त होता है तो वह परिचित होते हुए भी अनूठा लगता है। अपने मौलिक भाव के लिए यह तदनुकूल शब्द और शब्द-सङ्कलन गढ़ लेते हैं।

आपकी 'कवि-विमर्श' नामक कविता जो यहाँ दी जाती है, आपकी शैली का सुन्दर उदाहरण है। मधु पुराना ही है, किन्तु प्याली एकदम नई और आकर्षक!

कवि-विमर्श

सराबोर-प्याली का तो रस नही कभी प्रिय छलक सकेगा!
अधजल गगरी छलका करती, पूरण-घट रहता है निश्चल!
चन्द पडे शबनम के कतरे, हरित बना देंगे क्या मरु-थल?
रस छलकाने का न समय है, पडते घी की भाँति जलेगा!
सराबोर-प्याली का तो रस, नही कभी प्रिय छलक सकेगा!!

शाश्वत निधन-हीन रहते क्या, सुख-दुख कृत (स+मार) नही है?
ससारी कर्मो से लिपटा, वह बन्धन मे पार नही है!
मुक्त हुए 'मानव' कैसा? फिर, सुख-दुख का भागी न रहेगा!
सराबोर-प्याली का तो रस, नही कभी प्रिय छलक सकेगा!!

ऋषी-मुनी भी देश काल की स्थिति का रखते अवधारण !
क्योंकि सानुकूलता उनकी, होती स्व-पर-श्रेय का कारण !
लता-सफलता पर उसकी ही, रक्षा में नव-कुसुम खिलेगा !
सराबोर-प्याली का तो रस, नहीं कभी प्रिय छलक सकेगा !!

मैं तो नहीं मानता जग को, इस थोथी-माया का जाया !
द्रव्य-क्षेत्र-भव-भाव-काल की, चलती-फिरती रहती छाया !
सत्य, शील, तप, दया बिना कुछ 'केवल त्याग' न काम करेगा !
सराबोर-प्याली का तो रस, नहीं कभी प्रिय छलक सकेगा !!

शान्ति द्वन्द एकत्र न देखे, आगे पीछे आते जाते !
हिंसा से उत्पत्ति अहिंसा की, ही वैयाकरण बताते !!
केवल अवलोकन न सार्थ है, जब तक वह कर्तव्य न लेगा !
सराबोर-प्याली का तो रस, नहीं कभी प्रिय छलक सकेगा !!

परिभाषा-भर की अभिगति से, दूर न होती हृदय कलुषता !
पूरब, पूरब-सा कैसे है ? क्यों पश्चिम की दहती रिपुता ?
क्षितिज-कुक्षि-अम्बरतल में भी, राग-द्वेष क्या घर कर लेगा ?
सराबोर-प्याली का तो रस, नहीं कभी प्रिय छलक सकेगा !!

संकट संस्कृत कर देता है आत्मग्रन्थि का विकृत-गठन !
खारी-तृप्त अश्रु की बूंदें, मधुरिम-शीतल कर देती मन !
देर भले अन्धेर नहीं है कृत का फल भरपूर मिलेगा !
सराबोर-प्याली का तो रस, नहीं कभी प्रिय छलक सकेगा !!

सुख-दुख, पाप पुण्य का अनुचर, दुख में भी प्राणी सुख कहता !
विज्ञ साम्य से देखा करते, मूरख उनमें रोता-हँसता !
नियति-नियम तो एक रहा है, कैसे कोई दो कह देगा ?
सराबोर-प्याली का तो रस, नहीं कभी प्रिय छलक सकेगा !!

श्री लक्ष्मणप्रसाद, 'प्रशान्त'

आपने २५ वर्ष के साधन-हीन जीवन के द्वन्दो को पार कर, आज जब लक्ष्मण प्रसाद जी 'प्रशान्त' पीछे मुड़कर देखते है तो उन्हें सन्तोष होता है—इस बात पर, कि अब परिस्थितियाँ बदल गई है और जीवन की वेदना ने उन्हें उस कवि के दर्शन करा दिये जो उनके हृदय में निहित था। आपने कविता लिखने के लिए काफी परिश्रम किया है, और साधना की है। फिर भी, लगता तो यही है कि उनकी कविता का स्वर सहज और नैसर्गिक है।

इनकी कविता में ससार की अस्थिरता और जीवन की विषमता की हल्की छाप है। पर, कवि के कर्तव्य की ओर भी इनकी दृष्टि है—

"हर दिल में उमड़ पड़े सागर, हर सागर में अमृत जागे,
अमृत की प्याली मे मानव का—एक अमर जीवन जागे।"

फूल

दो दिन की अस्थिर सुषमा पर मत इतराना फूल।
प्रात समय हँसने मतवाले! साँझ न जाना भूल॥
मत करना अभिमान रूप का केवल जग अभिलाषी।
नहीं सत्य अनुराग, स्वार्थपरता, फिर वही उदासी॥
माना बन बन मे ढूढा करता तुझको बन-माली।
पर क्या? स्वार्थ वासना मे मानव का अन्तर खाली?
सम्हल सम्हल रहना शिखरो पर फिसल न जाना भूल।
पातपात डालीडाली मे निहित नुकीले शूल॥
जिसके साथ रहे जीवन भर खेली आँखमिचौनी।
वही विहग सूनी सन्ध्या मे बने विरागी मौनी॥

राही झूठ प्रेम दिखला कर व्यर्थ तुझे अपनाते।
चूस चूस पी अमृत, मसल कर फेक अरे इठलाते॥
हार सृजन कर वेध हृदय, अपने जी भर तरसा कर।
दुनिया ने पाई शोभा तेरा ससार मिटा कर॥

कवि से

पत्थर मे कोमलता जागे,
अगारो से बरसे पानी।
निस्तब्ध गगन हो उठे मुखर,
मूको की सुन भैरव वानी॥

हो उठे बावली दिशा, निशा–
का चीर गहन तम मे चमके।
हिमकर की शीतल किरणो से,
उद्दीप्त तेज रह रह दमके

मानव के इगित पर शत् शत,
न्यौछावर हो जाये प्राणी।
सुन मानवता का सिहनाद,
नत मस्तक हो जाये मानी॥

हर दिल मे उमड पडे सागर,
हर सागर मे अमृत जागे।
अमृत की प्याली मे मानव का,
एक अमर जीवन जागे॥
कवि! गान मधुर ऐसा गा दे।

अब कैसे निज गीत सुनाऊँ !

युग युग का इतिहास व्यथित–
आँसू से निर्मित एक कहानी ,
भग्न हृदय भी आज लिये है
अपने पन की करुण निशानी ।।
वृद्ध कण्ठ की स्वर लहरी, तब कैसे जीवन राग सुनाऊँ ।।अब०।।

सुख दुख की दुनिया मे–
एकाकी हँसना रोना बाकी है ।
उठ उठ कर गिरना गिरकर–
रोना, यह जीवन झाँकी है ।।
देख रहा ससार छलकते दृग मे कैसे अश्रु छिपाऊँ ।।अब०।।

कण कण मे सघर्ष, धधकती–
चारो ओर समर की ज्वाला ।
भूल गया मानव मानवता,
सर्वनाश की पीकर हाला ।।
बन्धु बन्धु का ही घातक, तब किसको अपना मीत बनाऊँ ।।अब०।।

भूमण्डल, अम्बर, जल, थल मे,
हाहाकार सब तरफ छाया ।
आशान्वित अनन्त जीवन मे,
कौन ?प्रलय सा भरता आया ।
अरे ! शून्य इङ्गित पथ पर मे, अब कैसे निज पैर बढाऊँ ।।अब०।।

श्री राजेन्द्र कुमार, "कुमरेश"

"एटा जिला में विलराम नाम एक ग्राम
ताही में बसत लाला झुन्नीलाल बानियाँ
ताके सात सुतन में दूजो सुत कुमरेश
पढिबे की खातिर विदेश चित्त ठानियाँ
थोड़ो सो कियो है याने हिन्दी को अभ्यास कछु
और कछु जाने नाहि जग की रितानियाँ
कविता न जाने, पर कविन की सगति तें
टूटी फूटी भाषत हैं नित्य ही तुकानियाँ"

यह है 'कुमरेश' जी का जीवन-परिचय—उनके अपने शब्दो में ! आपने आयुर्वेद कॉलेज, कानपुर में आयुर्वेदाचार्य तक अध्ययन किया है। सन् १९३२ से लिखना प्रारम्भ किया है और तब से निरन्तर जैन-अजैन पत्रो मे लिखते चले आ रहे है।

आपने 'अजना' और 'सम्राट् चन्द्रगुप्त' नामक दो खण्ड-काव्य लिखे है जो अभी अप्रकाशित है। एक और खण्ड-काव्य आप लिख रहे है।

आप नये पुराने सभी ढ ो की कविता आसानी से लिख सकते है। यह कुछ छायावादी शैली को अपनाते है, फिर भी इनकी अपनी ही शैली है। इनकी बडी खूबी यह है कि विषय के अनुसार भाषा का सुगम या गहन प्रयोग करते है, जो स्वाभाविक प्रतीत होती है।

'कुमरेश' जी प्रधानत साहित्यिक आदमी है, और भविष्य में साहित्यिक जीवन ही इनकी प्रवृत्ति के अनुकूल होगा। आप कहानियाँ भी अच्छी लिखते है, जो पत्रो में प्रकाशित होती रहती है।

जागृति-गीत

जाग जीवन के करुण वह एक अश्रुत राग !
धुन उठे ध्वनि सुन जगत की आत्मा उर मौन
रह सके बैठी न स्थिर ताल पर यह तो न
कर उठे सहसा थिरकती एक ताण्डव नृत्य
और यह हो जाय तत्क्षण वह प्रलय सा कृत्य
शाप या वरदान प्रतिक्षण फूकते हो आग।
आ भरे उत्साह तन मे और मन मे रोष
टूट जाये आज चिर की नीद आये होश
देख ले दृग खोल अब क्या क्या रहा है शेष
शेष क्या है ! दैन्य, बन्धन, और दारुण क्लेश
हक कर ज्वाला मिटा दे यह अमिट मे दाग।
फक दे वह प्राण मृत सी देह मे अविराम
स्वप्न इस आराम का मन मे न लेवे नाम
उठे जडता मे निरन्तर भयानक तूफान
और पशुता मे पुरुष पा जाय यह परित्राण
खेल ले निज शम्भु शोणित मे विहसि हँसि फाग।
जाग जीवन के करुण वह एक अश्रुत राग !

परिवर्तन का दास

अथ मे लिखा जा रहा प्रतिक्षण है इति का इतिहास।
दुख मे झलक रहा है सुख का वह मादक मधुमास ॥

लिये खडा है विरह मिलन का सुन्दर सा उपहार।
राह हास की देख रहा है उन्मन हा-हाकार ॥

एक आग लेकर विराग की जलता है अनुराग।
मुग्ध प्रतीक्षा मे आशा की रही निराशा जाग ॥

नाश गीत गाता विकास के, करता है मनुहार।
पाप जलाये दीप पुण्य का, झाँक रहा है द्वार ॥

मृत्यु मानिनी सी करती है जीवन का उपहास।
और हाय ! मै बना हुआ हूँ परिवर्तन का दास ॥

बहिन से

मुझसे हृदयहीन भाई के बहिन बाँध मत राखी।
जिसने तुझ दुखिया अबला की है न कभी पत राखी ॥

जो अपने स्वार्थो पर तेरी नित बलि देता आया।
जिसके दिल मे दर्द नही है, नही कसक है बाकी ॥

तू अपने दुक्खो मे रो रो–हँस हँस जूझ रही है।
और इधर यह ढूढ रहा है सुरा, सुराही, साकी ॥

यह निर्मम बेसुध अस्नेही बना पुरुष मे पशु है।
उसे बना सकती न पुरुष फिर तू या तेरी राखी ॥

अरी छोड भाई की छाया कसके कमर खडी हो।
दिखला दुर्गा और भवानी की सी फिर मे झाँकी ॥

पंथी

आशाओं का दीप जलाये पथी चला आज किस पथ पर !

पैर बढाये चला जा रहा अपने सर पर रखकर गठरी ।

कहाँ हृदय की प्यास बुझाने चला छोडकर है यह नगरी ।।

भूल न जाये राह, जा रहा किसकी मन मे दुआ मनाता ।

जी मे किस उलझन के सुन्दर से सुन्दर यह स्वप्न बनाता ।।

घर पर बाट देखती होगी बैठी क्या इसकी भी रानी ।

याद इसे भी आती होगी अपनी बीती हुई कहानी ।।

किसे सुनाये, किसे बताये, राह अकेली साथ न प्रियवर !

आशाओं का दीप जलाये पथी चला आज किस पथ पर !

अरमानो मे झूम रही है क्या इसके भी एक दुराशा ।

जिसके कारण अकुलाया सा बढा जा रहा भूखा प्यासा ।।

जीवन की दुविधाओ ने नित इसे कर दिया है क्या उन्मन ।

गूँज रहे कानो मे इसके प्राणो के या शत् शत् क्रन्दन ।।

बाधाओ ने तोड दिया है क्या इसका आखिरी सहारा ।

ढूँढ रहा है क्या दुनिया के जाने को उस पार किनारा ।।

कौन प्रेरणा लेने देती इसको चैन कही न घडी भर ।

आशाओ का दीप जलाये पथी चला आज किस पथ पर !

श्री अमृत लाल, 'चंचल'

कवि और लेखक के रूप मे 'चचल' जी समाज में सुपरिचित हैं। विद्यार्थी अवस्था से ही आपको साहित्यिक लगन है। जब आप ७-८ वर्ष पूर्व, हरदा कॉलेज में पढते थे, उसी समय आपने संस्कृत के 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' ग्रन्थ का हिंदी-कविता में अनुवाद किया था जो प्रकाशित हो चुका है। आपको सस्कृत और हिन्दी का अच्छा ज्ञान है। उर्दू साहित्य से भी रुचि है।

'चचल' जी की रचनाये अत्यन्त मधुर होती हैं। आप प्रकृति-दर्शन से प्राप्त आह्लाद की अभिव्यञ्जना सरल और स्वाभाविक पदावलि द्वारा करते हैं, किन्तु पार्थिव के वर्णन में भी, अपार्थिव तत्त्व की ओर सकेत करते चलते हैं। आपकी साहित्यिक प्रगति के मूल मे दार्शनिक सस्कृति की छाप है।

अमर पिपासा

कहाँ दौड रहा मृग छौने अचेत
अरे यहाँ नीर की आशा नही
मरुभूमि है यह मृग मरीचिका वह
यहाँ खेल तू प्राण का पासा नही

यहाँ लाखो शहीद हुए कवि 'चचल'
तू भी दिखा ये तमाशा नही!
यहाँ जिन्दगी ही बुझ जाती है, पर
बुझ पाती किसीकी पिपासा नही।

कहाँ झूम रहे मदमत्त पतंग,
अरे यह आग तमाशा नहीं !
बन जाओगे खाक अभी कवि 'चंचल'
मोल लो व्यर्थ निराशा नहीं !

यह चाह की प्यास है नित्य सखे !
मिटती कभी यह अभिलाषा नहीं ?
यह जिन्दगी ही बुझ जाती है पर
बुझ पाती किसीकी पिपासा नहीं !

मन चाह की राह में आहें भरो
इस चाह में लुत्फ जरा सा नहीं !
इस चाह का जो भी शिकार बना
वह बना निज प्राण का प्यासा वहीं !

यह चाह यहाँ दुखदाई सखे !
मिटती इसकी अभिलाषा नहीं
यह जिन्दगी ही बुझ जाती है, पर
बुझ पाती कभी भी पिपासा नहीं !

श्री खूबचन्द्र, 'पुष्कल'

आपकी अवस्था अभी २५ वर्ष की है। यह सीहोरा (सागर) के रहनेवाले हैं। काव्य-साहित्य से बचपन से ही अनुराग है। आप लिखते हैं--

"मुझे कविता की स्वाभाविक लगन है, और यह ध्रुव सत्य है कि कविता के बिना मै उन्मत्त बना रहता हूँ"

'पुष्कल' जी ने अनेक विषयो पर अब तक जो कवितायें लिखी है, उनकी सख्या काफी है। यह बहुत ही होनहार कवि है।

अपनी कविता में आप वैयक्तिक सुख-दुख की अनुभूति का राग नही छेडते। वाह्य-दृश्यो और पदार्थों को केन्द्र में रखकर यह अपने हृदय की प्रतिक्रिया का प्रदर्शन करते है। भाषा, भाव और विषयो का सकलन सरल होता है।

भग्न-मन्दिर

अहा ! पावन तम पुण्य प्रदेश, धर्म के प्रामाणिक इतिहास।
प्रकृति के अञ्चल मे स्थिर, मौन हो किन्तु लिये उल्लास॥
कलाकारो के स्मृति चिन्ह, कलाओ के सग्रह स्थान।
अहो ! पाया तुमने केवल, विश्व मे सर्वोत्तम सन्मान॥
किन्ही मन्दिर मे मानव दल, किया करते अनुपम सगीत।
गँजता रहता निर्जन मे, निकटवर्ती निर्झर का गीत॥
कलानिधि कहलाने के योग्य, विश्व मे सर्वोन्नत साकार।
दिवाकर, चन्द्र और तारे, रहे निशदिन निर्निमेष निहार॥

शिखर रमणीक गगनचुम्बी सर्व गुण से हो तुम भरपूर।
देखकर तुम्हे मानियो का, मान होता है चकनाचूर ।।

कही तुम ! निर्मित हो ऐसे, चहँ दिश निर्जन सूनापन।
तपस्वी निश्चय हो स्वयमेव, तपस्वियो के हो जीवन धन ।।

मूर्तियाँ विश्वेश्वर की रम्य, वेदिका ऊपर निश्चल है।
भाव अवलोकन से होते, परम पावन अति निर्मल है ।।

किसी बीहड वन मे तुम मौन, बने भग्नावशेष ! खडहर ! !
समय पाकर निर्दय दुष्टा, जरा ने किया जीर्ण जर्जर।

धराशायी ! ओ भग्नावशेष !
खडहर ! जीर्ण-शीर्ण मन्दिर !
प्रशसा करता जन समुदाय
तुम्हारे चरणो पर गिर गिर ।।

कवि कैसे कविता करते हैं ?

कवि ! कैसे कविता करते है ?
मै यही विचारा करता हूँ ये कविता पर क्यो मरते है ?

जीवन पथ इनको कटकमय,
बाधाओ मे ध्रुव सत्य विजय।
दुनिया का सुख दुख लिखने को,
लगता है इनको अल्प समय।।

कवि की उस तुच्छ तूलिका से मधु अक्षर कैसे झरते है !

निर्जन के सूनेपन मे क्यो–
चिन्तित रहता इनका जीवन ?
प्रकृति के प्रतिक्षण का कैसे
ये करते है मञ्जुल चित्रण ।।
निर्बल निज तन से फिर कैसे ये कविता सरिता तरते है ।।

मृतप्रायो मे जीवन लाना–
नवयुवको को पथ बतलाना ।
दीनो की करुण कराहो को
दुनिया न कविता मे जाना ।।
धन, वैभव, तन, बल क्षीण किन्तु ये कविता मे क्या भरते है ?

मै चिन्तित सा रहता निश-दिन
यह कविता क्या, कैसी होती ?
छोटा सा छन्द बनाने को–
मम भावो की वीणा रोती
कविता करना कब आयेगा हम यही विचार करते है ।।

जीवन दीपक

जीवन दीपक जलता प्रतिपल !

प्राण तेल है, दीप देह है
दोनो का अनुपम सनेह है
अज्ञानान्ध स्वरूप गेह है
उसमे ज्योति जलाता निर्मल !

सब विधि भाव प्रभा का उद्भव
हो विलीन क्षण क्षण मे अभिनव
कैसा जीवन का महोत्सव
नवल दीप जब जलता झिलमिल ?

आशाओ की ज्योति निकलती
घोर निशा का धुआँ उगलती
मानव की यह भीषण गलती
प्रणयी बन क्यो होता पागल ?

आता है जब काल का झोंका
प्राण तेल तब देता धोखा
रुकता नही किसी का रोका
जलते जलते बुझता तत्पल ?

श्री पन्नालाल, 'वसन्त'

आप समाज के उद्भट् विद्वानो और साहित्य-सेवियो में है। आप साहित्याचार्य, न्यायतीर्थ, और शास्त्री है। आपका जन्म सन् १९११ में, पारगुँवा (सागर) मे हुआ।

आपने सस्कृत के अनेक धार्मिक ग्रन्थो की टीकाये लिखी है और सस्कृत में गद्य तथा पद्य में मौलिक रचनायें की है।

'वसन्त' जी रातदिन साहित्य-सेवा में निरत है। विचार आपके बहुत उदार और राष्ट्रवादी है। अनेक विषयो पर आप सफलता से लेखनी उठाते है, किन्तु आपकी प्राय कविताये या तो प्रकृति को लक्ष्य करके लिखी जाती है या वह राष्ट्रवादी होती है।

जागो जागो हे युगप्रधान !

जागो जागो हे युग प्रधान !

है शक्ति निहित सारी तुम मे, तुमही हो जग के नर महान !
क्षिति पर हरियाली छाई है, पर सूख रहे मानव आनन
सरिताएँ वन मे उमड रही, पर खाली है मानस कानन
घनघटा व्योम मे उमड रही, पर भू पर है ज्वाला वितान
जागो जागो हे युगप्रधान !

नभ से होती है बम्ब वृष्टि, क्षिति पर सरिताएँ लहराती
जठरी मे नर के ज्वालाएँ, है बढी भूख की हहराती
है सुलभ नही दाना उनको आँखो मे छाया तम महान
जागो जागो हे युगप्रधान !

कितने ही भाई विलख रहे, कितनी ही बहिने रोती है
कितनी ही माताएँ प्रति पल अपने शिशुधन को खोती है
जग भूल गया कर्त्तव्य कर्म, जिससे माता का सुख निधान
जागो जागो हे युगप्रधान !

है रणचण्डी का अतुल नृत्य, दिखलाता जग मे विकट खेल
है बन्धु बन्धु मे प्रेम नही, है नही किसी के निकट मेल
ककाल मात्र अवशेष रहा, सब दूर हुआ बल सौख्य दान
जागो जागो हे युगप्रधान !

यह काल दैत्य ज्वालाभितप्त, करता आता है ध्वस आज
यह प्रलय केद्र उत्तप्त हुआ, है सजा रहा सहार साज
बन उठो वीर ! हे मजल मेघ ! कर दो जग का ज्वालावसान
जागो जागो हे युगप्रधान !

जगती मे छाया निर्विडक्लान्त, पथ भूल रहे नर सुगम कान्त
दिखता है मानव हृदय क्लान्त सागर लहराता है अशान्त
लेकर प्रकाश की एक किरण, करने जग मे आलोक दान
जागो जागो हे युगप्रधान !

हे पुरुष आप पुरुषार्थ करे, वर ओज विश्व मे प्राप्त करे
हे तरुण, तपी तरुणाई मे, नभ मे महान् आलोक धरे
भरकर उर मे सन्देश दिव्य, फैलाने जग मे अतुल ज्ञान
जागो जागो हे युगप्रधान !

त्रिपुरी की झाँकी

त्रिपुरी के सुन्दर प्राङ्गण मे, रेवा का कलरव देखा ।
विन्ध्याचल के विजन विपिन मे, शान्ति क्रान्ति का युग देखा ।।

खण्डखण्ड मे, कणकण मे यश, वीरो का छाया देखा ।
नीले नभ मे पूर्व जनो का, सिहनाद गुञ्जित देखा ।।

•

बिजली की झिलमिल आभा मे, वृक्षो को हँसते देखा ।
वीरो के वर अट्ट-हास मे, गिर गह्वर मुखरित देखा ।।

गिर-माला की मध्य वीथि मे, लोगो को आते देखा ।
अपने मुकुलित हृदय-क्षेत्र मे, भव्य-भाव भरते देखा ।।

हस्तकला का सुन्दर चित्रण, भारत-वीरा को देखा ।
महिलाओ के सुन्दर मन मे, सेवा-व्रत जागृत देखा ।।

तरुणाई की ललित लालिमा, से नभ को रञ्जित देखा ।
प्रबल ओज से रज कण-कण को, उद्भासित होते देखा ।।

बावन गज से युक्त शुभ्र रथ, का उत्सव भरते देखा ।
लाखो जनता की जय ध्वनि से, गिर मण्डल गुञ्जित देखा ।।

नीले नभ मे राष्ट्र पताका को लहराते भी देखा ।
'झडा ऊँचा रह हमारा' का गाना गाते देखा ।।

रजनी के नीरव निकेत मे, कवियो का सगम देखा ।
कोमल कान्त मधुर कविताओ, से नभ को पूरित देखा ।।

कुछ नव चेतन प्रतिनिधियो को, वीरभाव भरते देखा ।
"जयप्रकाश" औ वीर "जवाहर", को गर्जन करते देखा ।।

सोशलिष्ट लोगो के दिल को, तत्क्षण मे गिरने देखा ।
गाधी-वादी नेताओ को, विजयलाभ करते देखा ।।

कभी जवाहर की चुटकीयो मे सबको हंसते देखा ।
कभी उन्ही के प्रबल नाद मे, खून खौलने भी देखा ।।

"मौलाना" को सजग भाव मे, जग जागृत करते देखा ।
कुछ अभ्यागत मिश्र-वासियो को हर्षित होते देखा ।।

श्री 'सरोजिनी' के कूजन मे, सभा भवन विस्मित देखा ।
'स्वागत नायक' के भाषण मे, मन गद् गद् होते देखा ।।

क्या देखा ? क्या आज बताऊँ ? मैने सब कुछ ही देखा ।
पर गाधी बिन अनुत्साह की, रेखा को विस्तृत देखा ।।

श्री वीरेन्द्र कुमार, एम० ए०

हिन्दी साहित्य में श्री वीरेन्द्रकुमार, एम० ए०, ने प्रतिभावान कवि और कलावान् कहानी-लेखक के रूप में पदार्पण किया है। आपका पहला कहानी सग्रह 'आत्म-परिचय' के नाम से प्रकाशित हुआ है जिसका हिन्दी जगत् में समुचित आदर हुआ है।

आपकी कविता में कोमल भावना, ऊँची कल्पना और सुन्दर भावुकता का दर्शन होता है। आपकी भाषा प्राञ्जल और कर्ण-मधुर होती है।

यहाँ उनकी 'वीर-वन्दना' शीर्षक सुन्दर और सजीव कविता दी जा रही है।

वीर-वंदना

लेकर अनग-मोहन यौवन, अधरो पर बकिम धनु ताने।
मनसिज की पुष्प-धनुष-डोरी, तुम तोड चले ओ मस्ताने!
नन्दन-कानन मे अप्सरियाँ बन कमल बिछी तेरे पथ मे।
पद-रज की उनको दे पराग, तू लौट चढा पावक रथ मे!
वह तीस वर्ष का अरुण तरुण, रति की शैया भी थी प्यासी।
त्रैलोक्य-काम्य रमणी के परिणय को निकले तुम सन्यासी!

बाला-जीवन, भोली सूरत, भौहों मे शत्-सन्धान लिये।
चितवन मे देश-काल पर शासन करने का अभिमान लिये॥
अधरो पर वीतराग ममता की अनासक्त मुस्कान लिये।
उन अवहेलित-सी अलको मे शाश्वत यौवन का मान लिये॥

चिर मोह-रात्रि भव की अभेद्य, भेदन करने चल पडे वीर।
भीषण जड-चेतन युद्धो मे, तुम जूझ चले जेता सुधीर।
हिमक पशु-सकुल बीहड बन, दुर्गम गभीर गिरि-पाटी मे।
तुम निर्भय विचरे हिमा भय, साक्षात् मृत्यु की घाटी मे!
निर्वसन, दिगम्बर, प्रकृत, नग्न, तुम विकृति विजेता क्षात्र-जात!
पृथ्वी ससागरा लिपटी थी, तव चरणो पर होने सनाथ!
झाडी-झखाड, वनस्पतियाँ, वल्लरियाँ भरती परिरम्भण।
विषधर विभोर हो लिपट रहे नग्ना जाँघो पर दे चुम्बन!

नाना विधि जीव-जन्तु कीडे, चीटी दीमक सब निर्भयतम।
पृथ्वी, जल, अम्बर, तेज, वायु, सब त्रस थावर जड औ' जगम॥
तेरी समाधि की समता के उस वीतराग आलिङ्गन मे।
सब मिलकर एकाकार हुए, निर्बन्धन, तेरे बन्धन मे!
कैवल्य ज्योति! आदित्य-पुरुष! ओ तपो-हिमाचल शुभ्र धवल!
तेरे चरणो मे बह निकली, समता की गगा ऋजु निश्छल!

इस निखिल सृष्टि के अणु-अणु के सघर्ष, विषमता औ' विरोध,
कल्याण-सरित मे डूब चले, हो गया ैर आमूल शोध।
तेरे पद-नख के निर्झर-तट, सब सिह, मेमने, मृगशावक।
पीते थे पानी एक साथ, तेरी छाया मे ओ रक्षक!
जिन-चक्रवर्ति! सातो तत्वो पर हुआ तुम्हारा नव शासन!
तीनो कालो, तीनो लोको पर बिछा तुम्हारा सिहासन!

श्री रवि चन्द, 'शशि'

श्री रविचन्द 'शशि' की रचनाओ ने कुछ वर्ष पूर्व से ही समाज के साहित्य-प्रेमियो का ध्यान आकर्षित किया है। आपकी आयु अभी २२-२३ वर्ष की है, पर आपने समाज के नवयुवक कवियो में अपना विशेष स्थान बना लिया है। आपके जीवन के वातावरण मे ही कविता का समावेश है, क्योकि आप समाज के प्रसिद्ध कवि श्री 'वत्सल' जी के दामाद हैं और आपकी पत्नी श्री प्रेमलता देवी 'कौमुदी' भावुक कवियित्री हैं।

श्री रविचन्द जी की कवितायें कल्पना-प्रधान होती हैं। छायावादी शैली आपको प्रिय मालूम होती है और आपकी राष्ट्रवादी कवितायें ओजपूर्ण होती हैं।

भारत माँ से

विस्मृत हुई क्या स्वर्ण युग की, यश भरी तेरी कहानी।
उत्कर्ष गिरि पर मुस्कुराती, जगविजयिनी नवजवानी॥
थी कभी इस विश्व की तू, कोहनूर सुवर्ण चिडिया।
गर्व भाल उठा रही थी, "सभ्यता की वृद्ध रानी"॥
वीरता-बल-ओज से, जिसकी बनी गाथा पुरानी।
युगो मे शाश्वत बनी है, वीर मनुजो की कहानी॥
अमित तम मे सन रही थी, विश्व की जब राह सारी।
युगल पद-रेखा तुम्हारी, थी धरा के पथ पुरानी॥
चूचला कलकल स्वरा, जिसमे तरगिनि डोलती थी।
उत्थान की द्रुत मेघ-माला, सरस अमृत घोलती थी॥
वीर गुण-गाथा सुनाकर आज राजस्थान रोता।
विजयलक्ष्मी सदा जिसका, स्वर्ण आनन खोलती थी॥

आज उसके मृदुल पद मे, बेडियाँ है झनझनाती, ।
किस विरह किस वेदना का, आह अब वे गीत गाती ।।
वक्ष मे है घाव भारी, हथकडी कर मे पडी है ।
हा-गुलामी-विषम-हाला, आज किसका जी जलाती ।।

विश्व का आदर्शवादी, आज जग पद चूमता है ।
जीर्ण शीर्ण, अवशेष टुकडे पर मदी हो झूमता है ।।
दूसरो की ताल पर हा गान गाता नाचता है ।
मुकलित बदन वह, आज, पीडा-मदन मे हा घूमता है ।।

आज जग के मुस्कुराने मे छिपा है हास तेरा ।
वेदना के रक्तदीपो से, सजा आकाश तेरा ।।
धरा को तमपुज को, यश-चन्द्रिका तूने दिखाई ।
एक अनुचर, व्यग मे अब कर रहा परिहास तेरा ।।

आज तेरी शक्तियाँ, पद मे पडी है--रो रही है ।
क्यो वृथा अनुताप का यह भार रोरो ढो रही है ।।
जननि, तेरी मातृप्रमी हुई जो सन्तति दिवानी ।
वह विहँस कर जान क्या सर्वस्व को भी खो रही है ।।

पददलित वसुधा विताडित, कहाँ वह, अभिमान तेरा ।
खर्व कैसे हो गया, स्वातन्त्र्य सौख्य निशान तेरा ।।
क्या न तू है सिहनी-हरि-सुत यहाँ क्या फिर न होगे ?
क्या न होगा, विश्व मे, फिर से जननि जय-गान तेरा ?

श्री 'रत्नेन्दु', फरिहा

'रत्नेन्दु' जी, फरिहा, ज़िला मैनपुरी के रहनेवाले हैं। यह कविता में स्वाभाविक रुचि रखनेवाले नवयुवक कवि हैं। आप लगभग ४०-५० कविताएँ लिख चुके हैं, जिनमें कई तो बहुत लम्बी-लम्बी हैं। दोहे, कवित्त से लेकर छायावादी और हालावादी आदि सभी शैलियों का प्रयोग करके आपने अपनी रचनाओं की शैली निर्धारित करने के लिए परीक्षण किया है।

आपकी कविताओं में अनेक भावों का सम्मिश्रण होता है इसलिए आशय कहीं कहीं दुरूह हो जाता है। इनकी शब्दयोजना बहुत सुन्दर होती है। कल्पना की उड़ान भी ख़ूब लेते हैं।

प्रकृति गीत

मेरे अंगों में पहिनाती
माँ क्यों तू इतने गहने
उषा तुल्य फूटी पड़ती छवि
स्वर्ण बाल चन्द्रानन में।

कर्ण विवर भेदक बाधा की
अच्छी लगती गूँज नहीं
मधु निशीथ का मर्मर भाता
जैसा निर्जन कानन में।

माँ! तेरा तो घड़ी यंत्र यह
घड़ी रुक रुक जाता है
रवि शशि पल भर कभी न भूले
निश दिन के संचालन में।

माँ! तेरे इस नृप प्रबंध में
श्रमिक कृषक भी भूखे हैं
कण-कण तक मुसकाता रहता
शुक्ला के शशि-शासन में।

आँखो मे लज्जाजन भर दे
यौवन वेग निहार सकूँ
बालामृत मद हीन पिला तू
मा ! मेरे शिशुपालन मे ।

मा ! किस नारी ने आजीवन
निज कर्तव्य निभाया है
उषा पुजारिन कभी न चूकी
निज रवि के आह्वानन मे ।

मा ! वह पचरगा दुकूल अब
बनवाओ न नवीन मुझे
दोष छिपा न सकूँ फेनोज्ज्वल
वसन करूँगा धारण मै ।

किस मानव का कितना कोई
जीव न मरने का साथी
मुदित दिवस भर नलिनी
रहती चन्द्रोदय के साधन मे ।

नर यात्री पोतो मे जल की
क्या अथाह छबि देख सके
नक्र चक्र जैसा पाते सुख
सागर के अवगाहन मे ।

शिशु तो मात गोद को देते
मल पुरीष क्षेपण से भर
तिक्त स्वाद से सबको रुचती
मा ! आँबी बालापन मे ।

गंध प्रकृति के लिये नियत हो
जिनकी ऐसे ज्योतिर्मय
सुमनों के सुरतरु अनंत सा
उपजा इस उर आँगन में।

मनन

मौन रजनी की गहन निस्तब्धता को चीर
स्वर भरूँगा विश्व भर का खींचि श्रेष्ठ समीर

युग युगों की चेतना सोई—उठी है जाग
उगल दूँगा—"कवि हृदय से काव्य की सी आग"

विविध रूपों का मुसाफिर सिन्धु का हूँ नीर
जगत संसृति चित्रपट की एक क्षुद्र लकीर

चाँदनी शशि से कहे क्या वास निज इतिहास
गगन से क्या कुछ छिपा है तड़ित चपल-विलास

विश्व का कण कण परस्पर कर रहा आलाप
मुझे अपने में मिलाने के लिये चुपचाप

खुद समझ लूँगा बताता पूँछने पर कौन
नित्य दे आती उषा रवि को निमंत्रण मौन

वीर जौहर व्रत करूँगा सहन कर हर व्याधि
लगी ध्रुव ध्रुव तक रहेगी यह अनंत समाधि

साधना में लीन था मैं नेत्र से—आभास
एक निकला—किया जिसने रूप का विन्यास

श्री अक्षय कुमार, गंगवाल

आपने अपना पद्यात्मक परिचय इस प्रकार प्रेषित किया है—

"परिचय मेरा है क्या ! जो दूँ, लेकिन तेरा है आदेश,
इसीलिए कुछ लिख दूँ माता अजयमेरु है मेरा देश,
ग्राम सिराना है छोटा सा, उसमें है मेरा लघु धाम,
नेमिचन्द्र जी का मैं सुत हूँ, 'अक्षय' है मेरा लघु नाम,
मारवाड में रहता हूँ अब कालू है आनंदपुर ग्राम,
यहाँ किया करता हूँ मात अध्यापन जैसा कुछ काम।
हिम से भी है अतिशय शीतल, 'ज्वाला प्रसाद' मेरे मित्र
मार्गप्रदर्शक हैं मेरे वे, औ उनका अति विमल चरित्र
बस इतना तो ही होता है, कविताकारो का इतिहास
सुख दुख की बातें लिखना तो होगा यहाँ सिर्फ उपहास"

गगवाल जी की कवितायें जैन-पत्रो में प्राय छपती रहती हैं। आधुनिक शैली की सवेदनाशील और क्रान्ति के भावो को जगानेवाली कवितायें आप सुन्दर लिखते हैं।

रे मन !

रे मन ! मन ही मन मे रम रे।
विकसित होकर प्राण गवाँता उपवन का उद्यम रे ।।रे मन०।।

है दैवी वरदान रूप सौदर्य अनूठा मिलना
किन्तु सदा पीडित देखी निर्धन की सुन्दर ललना
नोच नोच पीडित करते है कामी धनिक अधम रे ।।रे मन०।।

कितना सुन्दर, कितना चचल, कानन का वह मृग रे
पर उसमे क्या तत्त्व देखना दृष्ट व्याधि का दृग रे
वही रूप ले कर रहता है उस अबोध का दम रे ।।रे मन०।।

वैभव का वैभव दिखना है सुन्दर, सुन्दरतर रे
अद्भुत महल, अनूपम उपवन, गज, रथ, जर, जेवर रे
चोर लुटेरो से पिटवाना वह प्रिय अप्रिय सम रे ।।रे मन०।।

अपनापन अपनी स्वतत्रता अपने मे ही लख रे
इस दभी माया की जग की तुझको नही परख रे
सहन शीलता नही यहाँ तू चलना सहम सहम रे ।।रे मन०।।

उद्बोधन

उठ उठ मेरे मन के किशोर !
उठ रहा अनल, उठ रही अनिल, उठ रहा गगन, उठ रहा सलिल
पार्थिव कणगण ने व्याप्त किया उठउठ कर यह ब्रह्माण्ड अखिल
उठ पच तत्त्व के साथ साथ क्या इनमे तू है भिन्न और
उठ उठ मेरे मन के किशोर !

उठ रही वेदनाये प्रति पल, उठ रही यातनाये प्रति पल
आहे बन बन चढ रही गगन मे, आशाये जग की जलजल
वेदना यातना आशाओ का तू भी उठ कर पकड छोर
उठ उठ मेरे मन के किशोर !

मानवता उठनी जाती है, दानवता उठनी जाती है
इस पुण्य भूमि की नवता मे, अभिनवता उठनी जाती है
इनको सभालने को ही उठ, कुछ लगा ज़ोर कुछ लगा ज़ोर
उठ उठ मेरे मन के किशोर !

हलचल

पतन भी उत्थान भी है।
है जहाँ निशि का अँधेरा, है वही होता सवेरा
रवि निशाकर का गगन मे, उदय भी अवसान भी है
पतन भी उत्थान भी है।

सुमन खिलते है मुदित हो, म्लान भी होते दुखित हो
विश्व की इस वाटिका मे, म्लान भी मुस्कान भी है
पतन भी उत्थान भी है।

इन दृगो मे जल छलकता, और उनमे मद झलकता
हृदय वारिधि मे जहाँ भाटा, वहाँ तूफान भी है
पतन भी उत्थान भी है।

है कही वीरान जगल, औ कही उद्घोष दगल
इस धरातल पर कही कलरव, कही सुनसान भी है
पतन भी उत्थान भी है।

है कही पर मूक पीडा, औ कही उद्दाम क्रीडा
विश्व के वैचित्र्य मे प्रासाद भी श्मशान भी है
पतन भी उत्थान भी है।

है कही साम्राज्य लिप्सा, औ कही भीषण बुभुक्षा
विश्व मदिर मे कही षट्रस, कही विषपान भी है
पतन भी उत्थान भी है।

श्री चम्पालाल सिंघई, 'पुरन्दर'

आपकी जन्म तिथि ५ फरवरी सन् १९१९ है। आपने माधव कॉलेज उज्जैन में एफ० ए० तक शिक्षा पाई है और उसके उपरान्त अपने व्यापार-कार्य को सँभाल लिया है।

आप सन् १९३५ से कवितायें और कहानियाँ लिख रहे हैं जो समय-समय पर जैन-पत्रो तथा 'माधुरी' 'मदारी' और 'जयाजी प्रताप' आदि साहित्यिक पत्रो मे प्रकाशित होती रही है! आपने बाल-साहित्य की भी सृष्टि की है। 'झुनझुना' नामक बालको के पत्र में आप "सरयू-सहोदर" के नाम से लेख और कहानियाँ देते है।

आपके छोटे भाई श्री गेंदालाल सिघई सुन्दर गीतिकाव्य लिखते है।

पुरन्दर जी की कवितायें ओजमयी और प्रसाद गुणवाली होती है

दीप-निर्वाण

(कन्या के स्वर्ग-वास पर)

जीवन का पूरा प्रकाश था,
आशाओ का सुखनिवास था,
प्रेम-पयोनिधि का विलास था,
दो हृदयो के स्नेह-मिलन का सुन्दर फल था वह अनजान।
जबतक श्वासा तबतक आशा,
कुटिल जगत का यही तमाशा,
क्षण मे आशा हुई निराशा,
ज्योति मनोहर क्षीण हो गई नष्ट हुए उर के अरमान।
जब तक नश्वर देह न छूटी,
तब तक ममता-रज्जु न टूटी,
हाय, काल ने कैसी लूटी,
अभी अभी सुख-सेज रही जो वह भी अब बन गई मसान।

मानी चेदि

रहे चिरतन चेदि-विभव जिसको निज मान दुलारा है ॥
उठा उच्च शिर-शृग विंध्य-गिरि नित रक्षा-रत होता ,
नेत्रवती का परम पूत पय पादाबुज को धोता ,
जिसका नाम स्मरण मात्र मन से कायरपन खोता ,
सदा काल अद्भुत साहस का रहा सलोना सोता ,
धीर-वीर रणसिह-व ी कुल-लाज धरो का प्यारा है ॥
तप कर जहाँ महर्षिवरो ने ज्ञान अनोखा पाया ,
नृप ने वहाँ कदराओ मे मूर्ति समूह रचाया ,
जिसने स्वाभिमान से अपना ऊँचा शीश उठाया ,
उस शिशुपाल नृपाल-श्रेष्ठ का सुयश मही मे छाया ,
इस की सतानो ने समझा तृणवत भूतल सारा है ॥
कीर्तिसिह की कीर्ति कीर्तिगढ यहाँ खडा अभिमानी ,
बुदेलो के प्राणदान को जो अमरत्व-प्रदानी ,
राजपूत महिलाओ के जौहर की अमिट निशानी ,
कण कण कथित कटी घाटी पर बाबर विजय कहानी ,
प्रण-पालन हित प्राणार्पण-युत वही त्याग की धारा है ॥
शिल्पकला-कौशल की कोने कोने फैली राका ,
वस्त्र-कला मे निपुण मध्य-भारत का यह है ढाका ,
रिक्त न होवे कभी रम्यता कोष विपुल सुखमा का ,
गूँज रहा है आज सेंधिया के प्रताप का साका ,
आत्मशक्ति-साहस के मद मे यश-सौरभ विस्तारा है ॥

प्रगति-प्रवाह

श्री मुनि अमृत चन्द्र, 'सुधा'

श्री अमृतचन्द 'सुधा' का जन्म सन् १९२२ में आगरे में हुआ। आपके पिता पं० युगलकिशोर जी अपने यहाँ के प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। सन् १९३८ में इन्होने स्थानकवासी सप्रदाय की मुनिदीक्षा ले ली। आपने लगभग ७ कविता पुस्तकें रची हैं, जो प्रकाशित हो चुकी हैं।

इनकी कविताओ का विषय प्रायः धार्मिक, सामाजिक और सास्कृतिक होता है। कविता की शैली आधुनिक ढंग की है। भाषा और भाव सरल होते हैं।

अन्तर

मानस मानस मे अन्तर है।
अडी खडी है आज हमारे–
सन्मुख कैसी जटिल समस्या!
सुलझ न सकती अरे! कहो, क्या–
विफल हुई सम्पूर्ण तपस्या?

सुप्त पडी है वही भूमिका जिस पर उन्नति पथ निर्भर है॥

झकृत था जो देश कभी–
अपने गौरव के गानो से।
आज शून्य होता जाता वह,
नित के नव अपमानो से॥

नाम हमारा कभी अपर था काम हमारा आज अपर है॥

रह करके परतन्त्र हमारा—
क्या कुछ जीने मे है जीना ?
वीरो का वह खून अरे ! क्या—
निकल गया बन पतित पसीना ?

कहो आज अस्तित्व हमारा क्यो कर तुला लचरतापर है।

बढ़ेजा

बढे जा अरे पथिक ! मत बोल !

जब तक तेरे विस्तृत पथ की अन्तिम सन्ध्या निकट न आले ।
देख, कही अब तू मत सोना , व्यर्थ समय योही मत खोना ,
कभी न भूल प्रमादी होना , निरुत्साह का बोझ न ढोना ।
भय को कर भयभीत हृदय मे निर्भयता को ध्येय बनाले ।
चाहे लाखो सकट आये , भीषणताये आन सताये ,
पर तेरे पग की सीमाये , पथ से विचलित हो ना जाये ।।
अपनी धुन मे गाये जा तू अपने पथ के गीत निराले ।
अग्र गमन हो प्रति दिन तेरा , कह दे—मै जग का जग मेरा ,
कभी मार्ग मे हो न अँधेरा , जब तू जागे तभी सवेरा ,
पराधीनता के मुख मे तू जड दे आजादी के ताले ।
क मत आगे को बढता जा , उन्नति के गिरि पर चढता जा ,
पान्थ ! परीक्षा मे कढता जा , निज मे निजता को पढता जा ,
होकर प्रेम-प्रणय मे पागल पीलें भर-भर अमृत प्याले ,
जब तक तेरे विस्तृत पथ की अन्तिम सन्ध्या निकट न आले ।।

जीवन

प्रेममय जीवन बनूँ मै

साधना मेरी अभय हो, सत्य से सुरभित हृदय हो,
सफल तरु सी वर विनय हो, सुखद मेरा प्रति समय हो,
स्वच्छता धन—घन बनूँ मै ॥

हो मिली मुझको सफलता, और अचला सी अचलता,
नाश हो सारी विफलता, मै निभा पाऊँ सरलता,
सरसता-उपवन बनूँ मै ॥

दृग सदयता के सदन हो, मधुर मधु से भी वचन हो,
मित्र मेरे सुजन जन हो, लख मुझे सब मुदित मन हो,
आप अपनापन बनूँ मै ॥

पाऊँ सत्कृत मे सुगमता, त्याग दूँ सम्पूर्ण ममता,
भस्म कर डालूँ विषमता, धार लूँ निज आत्म-दमता,
निर्धनो का धन बनूँ मै ॥

मानसिक सन्ध्या विमल हो, भावना मेरी धवल हो,
धर्ममय पल हो, विपल हो, शील भी शुभ हो, सबल हो ॥
सौख्य का साधन बनूँ मै ॥

श्री घासीराम, 'चन्द्र'

श्री घासीराम 'चन्द्र', नई सराय, लगभग १०-१२ वर्ष से कविताएँ लिख रहे है। प्रारभ मे आपने कवि-सम्मेलनो के लिए समस्या पूर्त्ति करके कविता रचने का अभ्यास किया। अब आप स्वतत्र विषयो पर रचनाएँ करते है। आप भावो की सुकुमारता की अपेक्षा विषय की उपयोगिता की ओर अधिक आकर्षित होते है।

फूल से

चार दिन की चाँदनी मे फूल ! क्यो कर फूलता है ?
बैठ कर सुख के हिडोले हाय ! निश दिन झूलता है !

आयगा जब मलय पावन, ले उडेगा सुख सुवासित,
हाथ मल रह जायँगे माली बनेगा शून्य उपवन !

फिर बता इस क्षणिक जीवन मे अरे क्यो भलता है ?

कर रहा शृगार नव-नव नित्य नित्य सजा सजा कर,
गा रहा आनन्द धुरपद प्रेम-वीणा को बजा कर।

काल की इसमे सदा रहती अरे प्रतिकूलता है !

आज तुम सुकुमारता मे मग्न हो निश दिन निरन्तर।
एक क्षण भर मे अरे हो जायगा अति दीर्घ अन्तर !

है यही जग-रीत क्षण क्षण सूक्ष्म और स्थूलता है !

आज जो हर्षा रही पाकर तुझे सुकुमार डाली,
कल वही हो जायगी सौभाग्य से बस हाय खाली !

देख कर लाली जगत की काल निश दिन भूलता है !

आज जो तेरे लिये सर्वस्व करते है निछावर,
कल वही पद धूल मे तेरे लिये फेके निरन्तर।

स्वार्थ-मय लीला जगत की मूर्ख ! क्यो कर तू हूलता है !

विश्व का नाटक क्षणिक है पलटते है पट निरन्तर,
आज जो है कल उसीमे ही रहा सुविशाल अन्तर !

है अभी अज्ञात इसमे, "चन्द्र" क्या निर्मूलता है ?
चार दिन की चाँदनी मे फूल क्योकर फूलता है ?

पं० राजकुमार, 'साहित्याचार्य्य'

पं० राजकुमार जी जैन-समाज के अतीव होनहार और सुयोग्य विद्वान हैं। आप सस्कृत साहित्य के तो आचार्य हैं ही, हिन्दी के भी सुलेखक और कुशल कवि हैं। आपने 'पार्श्वाभ्युदय' नामक संस्कृत काव्य का हिन्दी-कविता में सुन्दर अनुवाद किया है। यह खंड-काव्य तथा अतुकान्त कविता लिखने में विशेष रूप से सफल हुए हैं। आपकी रचना में संस्कृतमयी और समासयुक्त शब्दावलि की छटा देखने को मिलती है।

आजकल आप प० बनारसी दास जी 'चतुर्वेदी' को भगवान महावीर की लोक-प्रिय जीवनी लिखने में सहयोग दे रहे हैं।

आह्वान्

जब जीवन-भाग्याकाश घिरा था
कुटिल कलुष-घन-माला से।
धू-धू कर जले जा रहे थे
नर-पशु जलती क्रतु-ज्वाला से॥

भू-माँ का था फट रहा वक्ष,
आकाश सजल-नयनाञ्चित था।
वह स्नेह, विश्व-बन्धुत्व-भाव
जीवन में कहीं न किञ्चित था॥

तब धीर वीर, तुमने आकर
समता का पाठ पढाया था।
वसुधा पर सुधा-कलित करुणा-
का सुन्दर स्रोत बहाया था॥

× × ×

पर वीर, तुम्हारा कर्म-मार्ग
हो चुका आज विस्मृतिवलीन।
कर रहे आज फिर से मानव–
मजुल मानवता को मलीन॥

जल रहे निखिल पुरजन-परिजन
विध्वस-पिण्ड-ज्वालाओ मे।
है चीख रही सारी जनता
उन कोटि-कोटि मालाओ मे॥

लुट गया आज माताओ का
सौभाग्य, हुई सूनी गोदी।
मानव ने फिर सहार-हेतु
वह एक नई खाई खोदी॥

नर कही तरसते दाने को,
शिशु कही विलखते मात-हीन।
झोके जाते है कही वही,
स्फोटक-ज्वालओ मे, कुलीन॥

हे वीर, विषमता यह कैसी,
कैसा यह अत्याचार-जाल।
क्यो हुआ अचानक ही कैसा
भीषण यह कुटिल कराल काल॥

आओ, फिर आओ, महावीर,
यह विषम परिस्थिति सुलझाओ।
सत्पथ से भूली जनता को
मङ्गलमय पथ दिखला जाओ॥

श्री ताराचन्द, 'मकरन्द'

'मकरन्द' जी की कविता प्रायः जैन पत्रो में छपती रहती है। इनकी कविताएँ शैली में छाया वादी ढग की होती है। जहाँ कविताओ का अभ्यन्तर कुछ अस्पष्ट हो जाता है, वहाँ छायावादी शैली कवि और पाठक दोनो के लिए बाधक हो उठती है। आशा है प्रगति के सीढियो पर दृढ़ता से पग रखते हुए 'मकरन्द' अभी आगे और बढेंगे—ठीक दिशा में।

जीवन-घड़ियाँ

ओ जाग जाग सोनेवाले!
हो गया देख स्वर्णिम प्रभात,
जीवन घडियाँ क्यो सोने मे
यो बिता रहे जब गई रात।

सोते मद होश तुम्हे मानव
है बीत चुकी अगणित सदियाँ,
क्यो अलसाये तुम पडे हुए
खो रहे आप अपनी निधियाँ।

मानस तट पर यद्यपि तेरे
आते है किरणो के वितान,
फिर क्यो तू सोता जाता है
आलस की चद्दर तान तान।

जीवन के क्षण क्षण बीत रहे
मोती की टूट रही लडियाँ,
इन इने गिने दो दिन मे ही
बीती जाती जीवन घडियाँ।

फिर हाथ भला क्या आवेगा
सचमुच यदि हालत यही रही,
मौका पा करके ही धो लो
बहती गगा की धार यही।

ओस

रजनी के प्रियतम बनकर,ले प्रणय वेदना सपना,
आये निशीथ के अचल, अस्तित्व मिटाने अपना,
ऊषा की अरुणा नभ से स्वागत करन को तेरा,
प्रतिबिम्बित हो प्रतिक्षण मे , तेराशृगार सुनहरा,
अथवा स्वर-परियो के ये, माला के मोती क्षिति पर,
किसके उर मे परिवेदन,उनकी निर्ममतम कृति पर,
किस हृदयहार के अनुपम, उज्वल ये बिखरे मोती,
शृगार सुरभि मे परिणित, तुमने छोडा है रोती ?
स्वप्नो की अर्ध निशा मे शीतल समीर झकझोरे,
निस्तब्ध प्रकृति के आँसू पुलकित उर के किलकोरे
दैदीप्यमान रवि आकर, वसुधा पर नवल प्रभाएँ,
तेरे मृदुतम तव तन से कई एक निकलती आहे,
क्षण भगुर है जग मानव! जल-कण की करुण कहानी
वैराग्य हृदय मे तेरे, नयनो मे होगा पानी

पुनर्मिलन

मेरी जीवन कुटिया मे तुम एक बार फिर आना

जीवन वसन्त मे मेरे
जब छाई हो अरुणाई,
कोकिल के पुलकित स्वर ने
हो प्रेम रागिनी गाई,
जीवन के पुनर्मिलन मे मैंने तुमको पहचाना।

मै मृदुल मालिनी भोली,
तुम मन्त्र मुग्ध से योगी,
तेरे वियोग मे मेरी
अन्तर्ज्वाला क्या होगी,
स्वर क्षीण हुई वीणा की तन्त्री के तार जगाना।

मेरे जीवन-उपवन मे
जब सुरभित सुमन खिले हो,
चिर चिर अनन्त के पथ मे
कलियो से मधुप मिले हो,
लहरो के फेनिल पथ मे बस एक बार मुस्काना।

हो चन्द्र देव, प्रिय रजनी,
ये झिलमिल नभ के तारे,
मै शून्य वासिनी जग की,
ये ही है एक सहारे,
सहसा विलीन हो निशि मे फिर भूल मुझे मत जाना
मेरी जीवन कुटिया मे, तुम एक बार फिर आना !

श्री सुमेरचन्द्र, 'कौशल'

जन्म—१० जनवरी १९१०

श्री सुमेरचन्द्र जी वकील "कौशल" सिवनी की प्रसिद्ध फर्म हुक्मचंद कोमलचंद के मालिक हैं। आपने अभी तीन वर्ष पूर्व वकालत प्रारंभ की है। आपकी अभिरुचि बाल्यकाल से ही साहित्य, दर्शन और संगीत की ओर विशेष रूप से है। आप लेख, कहानियाँ और कविता लिखा करते है जो जैन-अजैन पत्रों में सम्मान के साथ प्रकाशित होती हैं। आप एक प्रभावशाली वक्ता और उत्साही सामाजिक कार्यकर्ता भी हैं। आपकी कविता में दार्शनिक पुट रहती है, फिर भी वह सुबोध और सुन्दर होती है।

जीवन पहेली

इस छोटे से जीवन मे, कितनी आशाएँ बाँधी,
मदिरा से भावुकता की, भर डाली जीवन-प्याली।
आशा का उडन खटोला, ऊँचा ही उडता जाता,
क्या मृग तृष्णा मे पडकर, यह जीवन सुखी कहाता ?
दुख सुख की आँखमिचौनी, है सब ससार बनाए,
आशा तृष्णा के वश हो, जगती मे पुरुष भ्रमाए।
जीवन है अजब पहेली, क्या भेद समझ मे आए,
"कौशल" ज्यो इसको खोलो, त्यो-त्यो यह उलझी जाये॥

आत्म वेदन

निराशा मे बैठे मन मार,
किया करते हो किसका ध्यान ?
बनाकर पागल जैसा वेष,
किया क्यो सुन्दर तन अति म्लान ?

अरे तुम हो उत्कृष्ट विभूति,
प्रणय तन्त्री की सुन्दर तान,
वितथ सुख स्वप्नो का छवि धाम,
किया क्यो माया का परिधान ?

लिया क्या छीन तुम्हारा प्यार,
किसी निर्मम निर्दय ने आज ?
बनाया कातर किसने तुम्हे
दूसरो के हो क्यो मुहताज ?

खोल नित अन्तरदृष्टि महान्,
त्याग दुनिया के कार्यकलाप,
खोजता फिरता है तू जिसे,
हृदय मे छिपा हुआ है "आप"।

श्री बाल चन्द्र, 'विशारद'

श्री बालचन्द्र की आयु अभी २० वर्ष की है। कविता रचने में इनकी नैसर्गिक प्रवृत्ति है। मालूम होता है जीवन के विषाद ने इन्हें निराशावादी बनाया है। यह अपने आपको नियति के हाथ की गेंद मानते हैं।"

बालचन्द्र जी कविता केवल 'स्वान्तः सुखाय' रचते हैं, और इसमें वास्तविक आनन्द अनुभव करते हैं।

हमें तो आशा है कि इनके कविता के स्वर बदलेंगे और उनमें इनकी यही भावना प्रधान होगी —

बाधा समूह का विशद जाल, कर छिन्न-भिन्न अथवा सभाल
हम बढे चलें अपने पथ पर, दें कभी न आलस को अवसर पर

वन के फूल से

अर जगत कोलाहल से तू
दूर घने निर्जन वन में।
हरी भरी सुन्दर डाली पर
मुस्काया मन ही मन में ॥१॥

वन देवी की सुन्दरता या
कोयल का कल कविता गान।
सुनी पपीहे की 'पिउ' की रट
कारण कोई या अनजान ॥२॥

पाकर दृढ निर्देश काल का—
तू फूला, तू मुस्काया।
कर सुगंधि का दान पवन को,
हँसते-हँसते मुरझाया ॥३॥

नहीं देवता के मस्तक पर
तूने चढकर इठलाया।
नहीं किसी प्रेमी को तूने
अश्रुहार शुभ पहिनाया ॥४॥

वीतराग तू, दोषरहित तू
बालक मन सा तू भोला
मग्न रहा अपने में ही तू
निज को निज से ही तौला ॥५॥

लेखनी से

अरी लेखनी ! लिख दे, लिख दे
वह बलिदान कहानी तू।
बढी चली जा निर्भय हो अब
लेकर लाल निशानी तू ॥१॥

लिख दे ऐसी कथा सिखा दे–
जीवन का उत्सर्ग हमे।
कूट कूट कर साहस भर दे
औ' उत्साहित करे हमे ॥२॥

उन वीरो का कीर्ति गान कर
जो जीने को मरते है।
जो स्वदेश पर, जो स्वधर्म पर
जीवन बलि कर देते है ॥३॥

रखे हथेली पर प्राणो को
निर्भय आगे बढते है।
सम्हल सम्हल पग रखते कैसे,
इस पथ पर जो चढते है ॥४॥

आ जावे आपत्ति अनेको,
बाधाओ के जाल विशाल।
किन्तु न रोक सकेगी उनको—
ऐसी कोई सी भी चाल ॥५॥

नही सोचते काँटो को वे
उस मग मे आनेवाले।
कानन सघन, अगम पर्वत औ'
बाधक नही नदी नाले ॥६॥

विश्व सुने वह गाथा उनकी
पुण्यरूप, अनुपम, सुखकर
स्वतन्त्रता का पाठ पढावे
कायरता-विभ्रम हर कर ॥७॥

हम भी बढे पथिक उनसे बन
निर्भय और प्रतिज्ञाबद्ध।
होगे होगे निश्चित ही हाँ,
हम औ' कार्य हमारे सिद्ध ॥

प्रभात

सुन्दर प्रभात ! सुन्दर प्रभात !

हो गया अन्धतम का विनाश ,
फैला दिगन्त तक यह प्रकाश ,
ऊषा का अनुपम सुखद हास ,
अथवा निशिनायक का प्रहास ,

हो गये प्रफुल्लित कमल गात ।

नव उदित सूर्य की रश्मिराजि ,
शोभन वेला की सुगढ साजि ,
लेकर हाथों उल्लास सहित ,
करने को देव चरण अर्पित ,

यह प्रकृति चली शोभन सुगात !

यह ज्योतिपुंज कैसा प्रवीण ,
करता जाता है शत्रु क्षीण ,
देता सन्देश यही नूतन ,
निर्माण करे अपना जीवन ,

हो जावेंगे सब मार्ग ज्ञात ।

बाधा समूह का विशद जाल ,
कर छिन्न भिन्न, अथवा सम्हाल ,
हम बढे चले अपने पथ पर ,
दे कभी न आलस को अवसर ,

होंगे हम भी जैसे प्रभात !

स्वतंत्रते !

अरी मुक्त मस्तिष्को की तू,
शक्ति और उत्साह अमर।
ओ स्वतंत्रते ! कारागृह मे
तेरी चमक सदा सुखकर ॥१॥

है निवास हृदयो मे तेरा,
जिन्हे न कोई बाँध सका।
एक प्रेम ही केवल तेरा,
जिनकी सीमा नाप सका ॥२॥

पैरो मे बेडी हो झनझन,
हाथो मे हथकडियाँ हो।
सदा पुजारी तेरे प्रमुदित,
यद्यपि दुःखमय घडियाँ हो ॥३॥

अन्धकार मे पूर्ण तलधरे
लाठी गोली अथवा जेल।
डिगा सकेगी क्या उपासको–
को तेरे, है क्या खेल ? ॥४॥

बन्दीगृह भी तीर्थस्थल है,
बलिवेदी उन वीरो की।
यही तपस्या, यही परीक्षा,
यही कसौटी धीरो की ॥५॥

देश गौरवान्वित होता है,
अपने अमर शहीदो पर।
स्वतन्त्रता का यश उडता है
खुले गगन मे फैला पर ॥६॥

अन्धकार मे मार्ग दिखाती,
हम को है सुस्मृति जिनकी।
खुले गगन मे तारो जैसी,
याद चमकती है उनकी ॥

श्री सुमेरुचन्द्र शास्त्री, 'मेरु'

आप बहराइच (यू० पी०) के रहने वाले हैं। व्याकरण, न्याय, साहित्य के विद्वान हैं। खड़ी बोली में सवैया आदि छंदों में बहुत सुन्दर रचना करते हैं। स्थानीय साहित्यिक क्षेत्र में आपका बहुत आदर है। यह 'कवि संघ' बहराइच, के मंत्री हैं। समस्या-पूर्ति विशेष रूप से सफलतापूर्वक करते हैं।

शारदा-स्तुति

शारदे! निहारिदे कृपा की कोर एक बार
क्लिष्टता मे केशव कवीन्द्र बन जाएँ हम।
वीर रस भूषण की व्यञ्जित पदावली का
ओज भरी प्रतिमा का रूप दिखलाएँ हम।
'सूर' सी सरस भाव व्यञ्जनो मे सिद्ध हस्त
'तुलसी' सी चारु चरितावली स्वाएँ हम।
मेरु' कवि वीणापाणि वीणा से नकार देनो
मञ्जुल पताके कविता के फहराएँ हम॥

सुवर्ण उपालम्भ

नहि दुख जरा भी हुआ मन को
जब खान से खोद निकाला गया।
नहि कान्ति मलीन भई तब भी
जब ज्वाल मे डाल तपाया गया।
उफ भी निकली न जुबाँ से मेरी
जब रूप कुरूप बनाया गया।
पर दुख है तुच्छ महा घुत्रची-
फल से यह तौल मे लाया गया॥

महाकवि तुलसी

राघव पुनीत पदपद्म का पुजारी वह
भक्त मण्डली का एक धीर वीर नेता था।
अटल प्रतिज्ञा मे अचल हिमाचल सा
ज्ञान कर्म भक्ति की विचित्र नाव खेता था।
अणु परमाणुओ मे सारे विश्व मण्डलो मे
राम का स्वरूप देख राम नाम लेता था।
'हुलसी' का लाल हिन्द हिन्दी हियमाल बन
राम पद प्रीति का मनोज्ञ ज्ञान देता था।१।
धन्य वह कटको की डाल अभिनन्दनीय
विकसित होता जहाँ सुमन सहास है।
ससत मे धन्य वह पतझड वाला ऋतु
जिसमे छिपा हुआ वसन्त का विलास है।
नर देह नश्वर भी जग मे प्रशसनीय
क्रीडा का अनन्त की बना जो अधिवास है।
दीनो का दलित देश धन्य कहलाये क्यो न
'तुलसी' सा रत्न जहाँ करता प्रकाश है।२।
कविवर! तेरी भारती मे है अनोखी ज्योति
होती ज्यो पुरानी त्यो नई सी दिखलाती है।
विश्व का रुदन और सृष्टि का विशद हास
मृदुल पदावली तो स्वय बताती है।
एक एक छन्द से है वसुधा सुधामयी सी
जीवन सगीत का अपूर्व गीत गाती है।
अतएव मुग्ध होने आज कवि मण्डली भी
तुलसी पदो मे प्रेम अजलि चढाती है।।३।।

परिचय

हृदय हिमालय हिलेगा परिचय सुन
पूछो मत किस की उर वेदना का भार हूँ।
विश्व की समस्त सपदाये जिससे है दूर
क्रूर उस जग का तिरस्कृत मैं प्यार हूँ।
स्वप्निल जगत मध्य तन्द्रिल बना ही रहा
केन्द्र करुणा का वह फेनिल असार हूँ।
विग्रह, विरोध, अवहेलना परावृत हूँ
अहत हृदय का विकट हाहाकार हूँ ॥१॥
नित्य मन मदिर के प्रागण मे खेल रही
पूरी जो न हो सकेगी ऐसी एक चाह हूँ।
खण्ड खण्ड हो चुके मनोरथ के सेतु जहाँ
थाह हीन घोर दुख सागर अथाह हूँ।
प्रति रुद्ध हेतु हुये विफल प्रयत्न ऐसा
अविरल रूप अश्रु धारा का प्रवाह हूँ।
सुनना, समझना विचारना है कोसों दूर
ऐसे शान्त उर की मैं कठिन कराह हूँ ॥२॥

कवि-गर्वोक्ति

अतुलित शक्ति मेरी कौन जानता है कहो
क्षुब्ध नर नारियो मे नव रस भर दे।
भर दे महान ज्ञान विपुल विलास हास
विशद विकास का विचित्र चित्र धर दे।
विहँस न पाई जो प्रसुप्त सदियो से पडी
ऐसी भावनाओ का प्रकाश दिव्य कर दे।
'मेरु' छवि कैसी निस्तब्धता निरीहता है
देश के अशेष व्यपदेश क्लेश हर दे ॥१॥

विषम विशेष पार तथ्य मे हलाहल को
सार हीन कर अस् तित्व भी मिटा दूँ मै।
जटिल समस्या याकि कठिन पहेली क्या है
विधि के विधान का भी गौरव घटा दूँ मै।
शखनाद जयघोष पार हो क्षितिज के भी,
अचल हिमाचल को सचल बना दूँ मै।
कल्पना किले मे जिसे बाँधना असभव हो,
सभव बना दूँ यदि शक्ति प्रगटा दूँ मै ॥२॥

श्री गुलाब चन्द्र, ढाना

आप सागर जिले के ढाना ग्राम के निवासी हैं। अनेक विषयों की जानकारी रखने के अतिरिक्त साहित्य से आपको विशेष रुचि है। अपने यहाँ के राजनैतिक क्षेत्र में भी यह सक्रिय भाग लेते हैं और जेल-यात्रा कर आये हैं। कविता अच्छी कर लेते हैं। अन्तर की अनुभूति की व्यञ्जना कम है।

चन्द्र के प्रति

निशा की नीरवता कर भग
गगन मे आते हो चुप चाप।
विश्व को देते क्या उपदेश
बताओ हे राकापति! आप॥

सूर्य की प्रखर रश्मियो मे
जगत सन्तापित होता नित्य
उसे फिर शीतलता देना,
निशापति! तेरा ध्येय पवित्र॥

रक मे श्रीमान् तक सदा
एक सा है तेरा व्यवहार
प्रवर्द्धित होते हो हर रोज
सुधाकर! करते हो उपकार॥

तुम्हे कहते है कवि सकलक
बडा निष्ठुर है यह व्यवहार
किन्तु मुख की उपमा देकर
किया करते है कुछ प्रतिकार॥

नित्य होते जाते कृश काय,
बताओ हे शशि! है क्या बात?
कौन सी दुश्चिता मे पड,
बनाते हो अपना कृश गात॥

विभाजित कर रक्खा तूने
तारिकाओ मे अपना सार
इसी से काला है क्या हृदय,
जिसे लखता सारा ससार ॥

पद्म कलिकाएँ मुरझा कर,
प्रफुल्लित होते थे राकेश !
इसी से प्रतिद्वदी तेरा,
बना है क्या वह चड दिनेश ॥

इसी से दुर्बल हो कर इन्दु !
एक दिन खोते निज सन्मान
सिखाते दुनियाँ को यह पाठ
मान का होता यो अवसान ॥

सफल जीवन

आँख वह होती न बिलकुल
जो न पर दुख देख रोती।
काम उसका क्या हुआ
जो स्वय सुख मे तृप्त होती ?
है श्रवण वे धन्य जो—
आवाज सुनते कातरो की,
वे गह्वर है जो कि सुनते
रागनी मजुल स्वरो की।

लाभ क्या है उन करो से
जो न गिरते को उठाये
या कि बन दानी जगत मे—
कीर्तियश अपना बढाये,
वह हृदय है नाम का बस
जो न भावो से भरा हो,
देश का अनुराग जिस मे—
पूर्णत लहरा रहा हो।

व्यर्थ है वह जन्म लेना
जो जिये अपने लिये ही,
धन्य है वह मृत हुये जो
सिर्फ औरो के लिये ही।

डॉ० शंकरलाल, इन्दौर

डा० शंकरलाल जी काला, डी० आई० एम०, इन्दौर, मध्यभारत के उदीयमान हिन्दी कवि एवं लेखक हैं। आपकी रचनाएँ 'जीवनप्रभा' 'जैनमित्र' और 'जैनबन्धु' आदि पत्रों में प्रकाशित होती रही हैं। वर्त्तमान में आप 'आत्मबोध' संस्कृत ग्रंथ का हिन्दी पद्यानुवाद कर रहे हैं। आप बालकों के लिए ओजमयी सुन्दर रचनाएँ भी करते हैं। उदाहरण दिया जा रहा है।

आज़ादी

भोले भाले बालक आओ मानस मंदिर के आधार,
जीवन के तुम ही हो साथी तुम हो देव अरे साकार!
मास पिंड के तुम हो पुतले राष्ट्र-सारिणी के पतवार,
तुम ही को अपने जीवन में इसका करना है उद्धार।
सेनानी बन समर सैन्य में तुम को ही लड़ना होगा,
गाँधी की आँधी में तुम को लघु-तृण-सा उड़ना होगा,
समय नहीं आता है बालक! समय नहीं देखा जाता,
जीने-मरने के प्रश्नों को कौन उपेक्षित बतलाता।
आओ, आओ, बालक वीरो! आजादी का जग लड़े,
कहीं रुके ना कहीं भगे हम विद्युत के बल आज बढ़े।
जन्मसिद्ध आजादी जग की इसके बल सब देश खड़े,
आज उसी आज़ादी के हित बोलो अब हम क्यों न लड़े?
बाल बन्धुओ! नहीं हमारा देश रहेगा फिर परतंत्र
जगती के कण-कण में फूंके आज़ादी जीवन का मंत्र।
झंडा ऊँचा करो देश का आज़ादी अब पाने को।
वीर भूमि के बालक वीरो! जीवन में सुख लाने को॥

मानव के प्रति

अरे मानव ! तू अब तो देख
पलक से ढके युगल-पट खोल
अहर्निश बीत रहा है आज
समय तेरा सब से अनमोल।
समझ जीवन में इस का मूल्य
यही जीवन का जागृत प्राण
इसे जो खोते हैं निष्काम
बने फिरते हैं वे म्रियमाण।
समय की मधुर साधना साध
प्राण अपने पर बाजी खेल
उतर पड रण आँगन के बीच
देश हित अपना देह ढकेल।
खिलाडी करना होगा खेल
छके शत्रू-दल सहसा देख
बने प्यारा भारत स्वातत्र
रहे ना पर बधन की रेख।
मिटा दे अधकार अज्ञान,
करा दे सब को सच्चा ज्ञान,
जुटा जीने के साधन नित्य,
कला-कौशल का ताना तान।
मिटा रोटी का व्यापक प्रश्न,
बना भारत को शिखरारूढ
कदाचित् समझ गया तू भूल
एक दिन देश जायगा बूड।

बाबू श्री चन्द, एम० ए०

बाबू श्रीचन्द जैन समथर राज्य के अम्मरगढ़ नामक ग्राम के निवासी हैं। बचपन से ही आपको कविता से प्रेम है। आपको करुण-रस प्रधान कविताएँ प्रिय हैं। आपकी अनेक कविताएँ जैन पत्रों में प्रकाशित होती रहती हैं। आप सुन्दर गल्प भी लिखते हैं। कुछ लेख आपने 'जयपुर जैन-कवि' नामक शीर्षक से लिखे हैं। आपकी कविताएँ मार्मिक और प्रसाद गुण पूर्ण हैं। "सामायिक पाठ" का आपने पद्यानुवाद किया है जो प्रकाशित हो चुका है। आप की रचना 'चन्द्रशतक' प्रकाशित हो रही है। आप का कविता कहने का ढग बहुत सुन्दर है।

गीत

ये पागल मन की आशाएँ
मेरी उत्कट अभिलाषाएं

गिरि शृगो पर सरस कमल हो, रस निकले रेणु के कण म
विह्वलता में बसे सान्त्वना, हो प्रमोद जग के चिन्तन म
यह क्षण भगुर जग निश्चल हो राग वेदना के स्वर में हो
विभीषिका की रणस्थली मे रगभूमि का मृदुल सृजन हो
मानव मात्र देव बन जावे सभी दीन वैभव सुख पाव
हो ममत्व पाषाण हृदय मे विषम गरल जीवन बन जाव
प्रस्थित यौवन के सौरभ मे झकृत अविनश्वर नित रव हो
लहरो से जग सागर तरना विह्वल मानव को सभव हो

ये पागल मन की आशाएँ
मेरी उत्कट अभिलाषाएँ

आत्म वेदना

मेरे कौन यहाँ पोछेगा
आँसू हा ! अञ्चल से ?
पारस्परिक सहानुभूति जब
भरी हुई है छल से !
समता सीखे यहाँ भला क्या
ईर्षा वश हो कर के ?
सुख का अनुभव यहाँ करे क्या
कटु आहे भर भर के !
धर्म हमारा कहाँ रहेगा—
जब अधर्म ने आ कर,
मानवता का नाश किया है
पशुता को फैला कर।
जिधर देखिये उधर आप को
दिखलाते सब दीन,
वैभवता अब कहाँ रहेगी
जब जग हुआ मलीन ?
पास पास करके हमने क्या
कर पाया है पास ?
तिरस्कार अपमान उपेक्षा
या कलुषित उच्छ्वास ?
पतझड के पश्चात् नियमत
आती मधुर वसन्त
पर पतझड के बाद यहाँ पर
आया शिशिर अनन्त

दोहावली

जीवन भर रटते रहे, हे चातक ! प्रिय नाम ।
मैं तो कभी न ले सका, हा ! प्रिय नाम ललाम ।।

कर की रेखा देख कर, मन की रेखा देख ।
कर की रेखा से सतत, मन की रेख विशेष ।।

निर्मोही बनना चहे, तू मोही को पूज ।
मैल तैल से धो रहा, हा ! तेरी यह सूझ ।।

बैठ महल मे मूढ तू, करत पथिक उपहास ।
कब से पतन बना रही, तेरी उठती साँस ।।

—(चन्द्रशतक से)

ऊर्म्मियाँ

श्री लज्जाती, 'विशारद'

श्री लज्जावती जी समाज की उन जागृत महिलाओ में से है जो यथा-शक्ति देश की सेवा और साहित्य की साधना में सदा तत्पर रहती है। आप जब मेरठ में थी तो वहाँ की महिला समिति की मन्त्रिणी थीं और अब मथुरा में जहाँ आपके पति बा० जगदीश प्रसाद जी ओवर सियर है, नारी समाज की उन्नति के कार्यों में योगदान देती है। आप 'वीर जीवन' और 'गृहिणी कर्त्तव्य' नामक दो पुस्तको की लेखिका है।

आपकी कविताओं में विषय के अनुसार ही शब्दो का चयन होता है, और भावों मे गभीरता रहती है। वेदना के भावो को चित्रण करते हुए इनकी कविता विशेष रूप से सजीव हो उठती है। 'फूल सुगधित तू चुन ले, शूलो से भर मेरी झोली', कितनी सुन्दर पक्ति है!

आकुल अन्तर

मै इस शून्य प्रणय वेदी पर,
किन चरणो का ध्यान करूँ
मृत्यु कूल पर बैठी कैसे,
अमर क्षितिज निर्माण करूँ

विश्वासो पर बसा हुआ है,
जग के स्वप्नो का ससार
सखी! भाग्य की अस्थिरताओ
पर किसका आह्वान करूँ

मेरी मार्गहीन यात्राये,
है अलक्ष्य गतिहीन सखी !
यह मग मे करुणा के टुकडे,
छोड इन्हे मत बीन सखी !

फूल सुगन्धित तू चुन ले,
शूलो से भर मेरी झोली।
पर आशा लतिका की मादक-तर,
स्मृतियाँ मत छीन सखी !

सम्बोधन !

जागृति के उज्ज्वल मन्त्रो से
जीवन-सूत्र पिरो लो
देश-भक्ति की त्याग-तुला पर,
अपना जीवन तोलो !

कर्मक्षेत्र मे लेकर आओ,
वह स्वप्नो का जीवन
आदर्शो मे परिणत हो फिर
शून्य भावना पावन

तन मन धन न्योछावर करके
माँ के बन्धन खोलो
अर्पण हँस हँस कर हो जाओ
भारत की जय बोलो।

श्री० कमलादेवी जैन, "राष्ट्रभाषा कोविद"

आप प्रगतिशील विचारो की शिक्षित महिला है। आप प० परमेष्ठीदास जी 'न्यायतीर्थ' सूरत की धर्मपत्नी है। आपने धर्म, न्याय और साहित्य का अथक मनन किया है तथा कविताक्षेत्र में विशेष सफलता प्राप्त की है। आपकी कितनी ही साहित्यिक रचनाएँ उच्चकोटि की है। सहारनपुर के एक कवि सम्मेलन में आपको 'रजत-पदक' भी मिल चुका है

आप न केवल अच्छा लिखती ही है, बल्कि कविताएँ बहुत जल्द बनाती है। इनकी रचनाएँ 'सुधा' 'कमला' आदि साहित्यिक पत्रो में निकलती रहती है। अभी राष्ट्रीय आन्दोलन में आप जेल यात्रा कर चुकी है। आपकी कविताएँ अलकारयुक्त किन्तु सुबोध होती है।

हम हैं हरी भरी फुलवारी

दुनिया के विशाल उपवन मे, हृदयो की कोमल डाली पर।
खिले हुए है सुमन सुमति के, जग मोहित है जग लाली पर॥
शोभित विश्ववाटिका न्यारी, हम है हरीभरी फुलवारी॥१॥
सुरभि सर्व जग के उपवन म, महक रही सुगुणो की मधुमय।
यह सन्देश सुनाती जग को विचर रही हो करके निर्भय—
हममे ही जग शोभा सारी हम है हरीभरी फुलवारी॥२॥
शायद समझ रही इससे ही, पुरुष जाति हमको अबलाएँ!
हरीभरी फुलवारी होकर, कैसे हो सकती सबलाएँ॥
यह सबलो की भूल अपारी, हम है हरीभरी फुलवारी॥३॥
पत्ते कोमल होने पर भी, जग भर को छाया देते है।
करते है उपकार जगत का, पर न कभी बदला लेते है॥
तब फिर कैसे अबला नारी, हम है हरीभरी फुलवारी॥४॥

महक उठा फूलों से उपवन !

विघट गया तम तोम निशा का,
उषा नटी उठ करके धाई।
अलसाये अरुणा के दृग ले,
कलिकाओ के सम्मुख आई ॥
उन्हे जगाने हो हर्षित मन, महक उठा फूलो से उपवन ॥

ऊषा के मृदु आलिगन से,
कलियो ने भी आँखे खोली।
आलस का क्षय करने के हित,
आँखे ओस बिन्दु मे धोली ॥
मुस्काये फिर दोनो आनन, महक उठा फूलो से उपवन ॥

दृश्य देख दोनो सखियो का,
नव प्रभात के रम्य पटल पर।
सुरभित कलिकाओ से मिलने,
वायु, वेग से आई चलकर—
करने कलियो का आलिगन, महक उठा फूलो से उपवन ॥

अपना तन सुरभित करने को,
लिपट गई खिलती कलियो मे।
फिर गुजित भ्रमरो को देखा,
हँसकर यह पूछा अलियो से—
करते क्यो फूलो का चुम्बन, महक उठा फूलो से उपवन ॥

विरहिणी

पिय न आये पियूँ कब तक,
यह निरन्तर धैर्य प्याली।
व्यथित मन को सान्त्वना दूँ
किस तरह अब कहो आली ॥१॥

हृदय दीपक हाथ से ढक,
चिर समय मे जी रही हूँ।
मिलन की आशा रखे,
समता सुधा रस पी रही हूँ ॥२॥

किन्तु समता सहचरी भी,
ऊबकर मुझसे किनारा।
कर गई अब है न मुझको,
कोई जीवन का सहारा ॥३॥

तप्त तन की ऊष्म आहे,
हृदय दीपक को बुझाने।
कर रही है यत्न भरसक,
आज इस पर विजय पाने ॥४॥

टिमटिमाता दीप यह,
बतला सखी कैसे बचाऊँ।
आश का अब डाल अचल,
ओट मे कैसे छिपाऊँ ॥५॥

श्री प्रेमलता, 'कौमुदी'

'कौमुदी' जी का जन्म सन् १९२४ में दमोह में हुआ। आप प्रसिद्ध जैन-कवि श्री प० मूलचन्द्र जी 'वत्सल' की सुपुत्री हैं। आपके पति श्री रविचन्द्र 'शशि' भी एक सफल कवि हैं। इसीलिए कविता की ओर आपकी सहज और सुलभ प्रवृत्ति है। आपने संस्कृत की पुस्तिका 'सामायिक पाठ' का पद्यानुवाद किया है जो प्रकाशित हो गया है। आपकी कविता में स्वाभाविकता भी है और सरसता भी। ये कविता का क्षेत्र व्यापक रखने का प्रयास करती हैं।

बापू से

तू है वसुधा का अग्रदूत,
शुचि विश्व शान्ति का देवदूत,
सदियो से सज्ञा शून्य बने—
तुझसे जीवित है यह अछूत।

तू है भारत माँ की लकुटी,
है स्वाभिवन तव घास कुटी,
अन्तरज्योतिर्मय व्यर्थ हुई,
कगाल शासको की भृकुटी।

तू है अजेय, तू है अगम्य,
हम विश्वभूति तू है अनन्य,
आत्मिक बलधारी, कर्म वीर,
कर दी विज्ञान कला नगण्य।

ओ सत्यदया के मूर्तिमान,
हे प्रेमपुजारी, कीर्तिवान,
युग युग की प्रलय बतावेगी—
तू है महान, तू था महान!

पनिहारी

ओहो, देखो चली आ रही रख सिर पर जल पनिहारी।
दूर राह से आती है पर नही अभी तक वे हारी।
छलछल कलकल जल करता है मुदित पुलक बढती जाती।
जैसे मजिल स्वर्ग मिली हो हँस हँस कर चढती जाती।
कभी वायु के झोको से हिल डुल क्रीडा करती सारी।
कभी अचचल स्निग्ध सलिल मे मलय थिरकती मतवारी।
बतियो की लडियो मे उलझी देखो दाँतो की लडियाँ।
मुसका मुसका खोल रही है अपने अन्तर की निधियाँ।
शुद्ध धवल जल भरा घडो मे शुभ्रभाव निर्मल दिल मे।
उनके दिल की चारुचन्द्रिका छिटक रही शीतल जल मे।
देखो किस उन्मत्त राग मे मस्त बनी इठलाती सी।
नाच रही है वेणीमाला अस्त व्यस्त इतराती सी।
बढ अवगुठन मे—चल चचल छिपा विहँसता चन्द्रानन।
नेत्रावलियाँ झाँक झाँक देती सन्देश किसे पावन।

श्री कमला देवी जैन

आप जैन समाज के गण्यमान्य विद्वान् प० शोभाचन्द्र जी भारिल्ल की सुयोग्य पुत्री हैं। काव्य रचना के लिए आप में जन्म जात प्रतिभा है जो समय और अनुभव के खराद पर चढकर हिन्दी-साहित्य-सुवर्ण की अँगूठी का सुन्दर नगीना होगी। सत्रह वर्ष की वय में, उन्नत कल्पना तथा सरस शब्दो के साथ सुन्दर भावो को गूँथना आपके उज्वल भविष्य का परिचायक है। आप सस्कृत और न्यायशास्त्र का विशेष अध्ययन करती हैं। आप साधारण विषय को भी भावो की पवित्रता द्वारा उज्ज्वल कर देती हैं।

रोटी

रोटी ! फूली देख तुझे मैं,
फूली नही समाती हूँ।
अपने मन की बात सोचकर,
मन ही मन हर्षाती हूँ।

तू मेरे प्रिय भ्रात उदर मे,
जाकर ऐसा रक्त बना।
मातृभूमि के लिये समय पर,
तन अर्पण कर दे अपना।

पूर्ण लालसा होवे मेरी,
यह वरदान माँगती हूँ।
मेरे तप्त हृदय को शीतल
कर दे यही चाहती हूँ

पहले चारो ओर जहाँ,
साम्राज्य शान्ति का था फैला,
वृद्धि नित्य पाती थी 'कमला'
ज्यो पाती है 'चन्द्रकला'।

वहाँ दीन दुखियो भूखो का
आज विलखना सुनती हूँ।
भारतीय माँ का सम्बोधन
'अबला' सुन दुख पाती हूँ

नायक बनकर मेरा भाई,
बने समर्थ सुधारक यह,
देश जाति की करे समुन्नति,
यही भावना भाती हूँ।

पथ विचलित यह मेरा भाई,
कभी नही होने पावे।
सज्जनता रूपी साँचे मे
ढले सदा ढलता जावे।

इतनी कृपा करो हे रोटी!
यह उपकार न भूल सकूँ।
जीवन बने बन्धु का उज्ज्वल,
कीर्ति श्रवण कर फूल सकूँ।

निराशा के स्वर में

साथी ! मिट गये अरमान ।

कण्ठ शुष्क हुआ करूँ क्या भग्न स्वर सधान ।
साथी ! मिट गये अरमान ।

ओज अब तन मे नही है, स्फूर्ति इस मन मे नही है ,
उचित अनुचित का नही है, अब हृदय को भान ।
साथी ! मिट गये अरमान ।

सूझता पथ ही नही है, सोच लूँ पर मन नही है ,
हो चुका है लुप्त मेरा, हित अहित का ज्ञान ।
साथी ! मिट गये अरमान ।

लुट गया मैं आज साथी, रखो मेरी लाज साथी ,
हुआ अब मेरे हृदय से, सौख्य का अवसान ।
साथी ! मिट गये अरमान ।

प्यार धोखे से जगत ने, लिया कुचला निर्दयी ने ,
मिला जीवन मे मुझे बस, दुख का वरदान ।
साथी ! मिट गये अरमान ।

मिला है यह दर्द जग मे, सह सकूँगा अब न कुछ मैं ।
आज पागल हो रहा हूँ, जगत मे अनजान ।
साथी ! मिट गये अरमान ।

खोजता हूँ उस निठुर को, चल दिया जो छोड मुझको ,
विलखता हूँ आज पथ-पथ ओ मेरे भगवान ।
साथी ! मिट गये अरमान ।

नाश के दुख मे कभी दबता नही निर्माण का सुख ,
मानते तो प्रभो ! मेरा कीजिये उत्थान ।
साथी ! मिट गये अरमान ।

श्री सुन्दर देवी, कटनी

यद्यपि श्री सुन्दर देवी ने कविता के प्रागण में अभी हाल ही में पदार्पण किया है, फिर भी अच्छी प्रगति कर ली है। यह कविता में हृदय के उद्गार सीधे और सरल रूप में इस प्रकार व्यक्त करती है कि इनके अनुभव की तीव्रता का अनुमान लग सकता है। आपकी शैली आधुनिक और वेदना-प्रधान है।

आप कटनी निवासी स० सि० धन्यकुमार जी की बहिन हैं। आपका विवाह जबलपुर के ऐसे घराने में हुआ है, जो देशभक्ति और त्याग के लिए प्रसिद्ध है।

यह दुखी संसार

आज का सहार कल जीवन बनेगा
इस दुखी ससार मे जितना बने हम सुख लुटा दे।
बन सके तो निष्कपट मृदुप्यार के दो कण जुटा दे॥
हर्ष की सौ ज्वाल छाती मे जलाकर गीत गाये।
चाहते है गीत गाते ही रहे हम रीत जाये॥
मत रहे यदि झोपडा सन्मार्ग तो फिर भी रहेगा।
आज का सहार कल जीवन बनेगा
हम कि मिट्टी के खिलौने, बूँद लगते गल मरेगे।
हम कि तिनके, धार मे बहते शिखा छू जल मरेगे॥
कौनसा वह बुलबुला होगा कि मत अगार होगा।
नाश की किरणो से द्वादश सूर्य से शृगार होगा॥
धार मे बहना कहाँ तक सोचना यह भी पडेगा।
आज का सहार कल जीवन बनेगा

जब समुन्दर बढ रहा होगा बडी भगदड मचेगी ।
और बढवानल निगोडी सामने आकर नचेगी ।।
क्या बुझायेगे कि 'फायर वर्क्स' मन मारे जलेगे ।
मौत रानी के यहाँ उस दिन बडे दीपक जलेगे ।।
आह ! क्या दुर्दिन अभी वह और भारत मे बढेगा ।
आज का सहार कल जीवन बनेगा
वह प्रलय का एक दिन प्रति दिन सरकता आ रहा है ।
काल गायक गीतयो मे ही सही पर गा रहा है ।।
उस महासगीत का हर प्राण से कम्पन लहरता ।
नृत्य की सी शान्ति होती एक क्षण जो भी ठहरता ।।
क्या कभी सम्भावना है दुष्ट दुर्दिन वह टलेगा ।
आज का सहार कल जीवन बनेगा

जीवन का ज्वार

अब मै ढूँढ किधर प्रेम का वह चिर निधि साथी तारा
अविरल बहती इन आँखो की रोके कौन प्रबल धारा
दुग्ध भरा था जिस प्याले मे फूट गया वह मधु प्याला
मेरे अन्तस्तल मे बहती चारो धाम विकट ज्वाला
यौवन का कर्पूर रहा जल आज प्रणय की ज्वाला मे
"अरे" पपीहा प्राण जगा जा इन्ही पियासे प्राणो मे
विफल प्रणयनी का अभाग्य है है टूटे नभ के तारे
कैसे भार सहूँ जीवन का अन्तिम घडियो के सारे

श्री मणिप्रभा देवी, रामपुर

श्री मणिप्रभा देवी को ही इस बात का मुख्य श्रेय है कि उन्होने वर्तमान जैनसमाज की महिलाओ को कविता रचने के लिए प्रेरित किया और उनकी कविताओं को 'जैन महिलादर्श' नामक मासिक पत्र में 'कविता मंदिर' के अन्तर्गत छाप छापकर लेखिकाओ को प्रोत्साहित किया। आप प्रारभ से ही कविता-मंदिर की संचालिका है, जिसे योग्यता से संपादित कर रही है।

आपने स्वयं भी बहुत सुन्दर कविताएँ की है जिनमें ओज और माधुर्य्य दोनों के दर्शन होते है।

आप कवि-श्रेष्ठ श्री कल्याण कुमार 'शशि' की धर्मपत्नी है।

सोने का संसार

जीवन की नन्ही नैया
डोल रही है जग जल मे
परिवर्तन हो रहे नये
नित जल अञ्चल मे

निरख निरख कर नया रूप
इसका पल पल मे
नूतन सागर बना एक
इस अन्तस्थल मे

कम्पन प्रकट हो रहा मेरे
मन निश्चल मे
लक्ष निकट है, लक्ष दूर
है कौतूहल मे

यही सोच है कैसे जाऊँ
इस सागर के पार
नाथ दया कर तुम बन जाओ
मेरी नैय्या के पतवार

× × ×

प्राची ने स्वर्णिलता पाई
मुझ मे भी नव लाली आई
उपवन मे कलिका मुस्काई
जीवन के कोने कोने मे
हुआ मधुर सचार

सुन्दर नव जीवन का मधुरस
'प्रभा'पूर्ण मलयानिल का यश
आज हुआ सब का सामजस
बन्धन विगत हुए छिन्नित हो
खुला मुक्ति का द्वार

मौन मन्द रव मे मुस्काया
मुझपर नव विकास बन छाया
बहुत खोज कर मैंने पाया
रहे सदा अक्षुण्ण हमारा
सोने का ससार !

श्री कुन्थ कुमारी, बी० ए० (ऑनर्स), बी०टी०

आप एक प्रतिभाशालिनी और विदुषी महिला हैं। आपने अंग्रेजी साहित्य के विशाल अध्ययन के साथ मातृभाषा के साहित्य का भी मनन किया है। देहली और पंजाब विश्वविद्यालय की बी० ए० और बी० टी० परीक्षाओ में आपने प्रान्त की महिलाओ में सर्व प्रथम पद और स्वर्ण पदक प्राप्त किया था। इन्होने अंग्रेजी-हिन्दी के अनेक अखिल भारतीय वाद-विवादो में भी प्रथम पारितोषिक प्राप्त किया है। आप दो वर्ष तक लाहौर के हंसराज महिला ट्रेनिंग कालेज में बी० टी० श्रेणी की प्रोफेसर रह चुकी हैं।

श्री कुन्थकुमारी हिन्दी में लेख, कहानी, और कविताएँ लिखती हैं। आपकी कविताओ और लेखो में रचना का सौंदर्य और कल्पना की कोमलता का दर्शन होता है। आप श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन एम० ए०, की धर्मपत्नी हैं।

मानस में कौन छिपा जाता ?

मानस मे कौन छिपा जाता ?
जीवन मे ज्वार उठा करके, मानस मे कौन छिपा जाता ?
मेरे उन्माद भरे मन को अनजाने मे बहला जाता।
मानस मे कौन छिपा जाता ?
दे क्षण मे सुख दुख की झाँकी, इस पल विराग, उस पल रागी,
उठनी मिटनी सी पीडा को, उलझा जाता, सुलझा जाता।

मानस मे कौन छिपा जाता ?

शशि रजत-सुधा बन रजनी मे, मादकता लहरा कर जी मे,

किसका माधुर्य तेज बन कर, रवि-पथ पर बिखर सिमट जाता ?

मानस मे कौन छिपा जाता ?

भ्रमर से

भ्रमर ! तू स्वाधीन उडजा !

विश्व के चचल हृदय मे, रमे तेरे प्राण भोले !

इस मधुर ससार की मृदु ताल पर तव गान डोले ?

वायु की उन्मुक्त लहरी ने सुनहले पख खोले

आज तू निर्बन्ध होकर, विश्व मे सब ओर उडजा !

तव हृदय के स्पन्द मे ही, हो चली प्रमुदित कली

सरस जीवन कर समर्पित, धूल मे मिलने चली

नित नई सी कली के उर मे मधुर आसव ढली

ले मधुप ! पी आज जी भर, और कल स्वाधीन उडजा !

नियति के उर मे लिखा है नित्य परिवर्त्तन हमारा

नियम बन्धन से रुकेगी, क्या प्रणय की वेगधारा

कठिन नीरस परिधियो मे, सत्य सुन्दर प्रेमहारा

तू मनोरथ के मनोरम पख पा, निश्चिन्त उडजा !

भ्रमर ! तू स्वाधीन उडजा ?

श्री रूपवती देवी, "किरण"

आप सी० पी० के सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता बाबू लक्ष्मीचन्द्र जी फागुल की विदुषी पुत्री हैं और जबलपुर के एक प्रतिष्ठित घराने में व्याही हैं। प्रतीत होता है कि आपका हृदय प्रकृति के सौंदर्य से प्रभावित होकर कविता की ओर प्रवृत्त होता है। आप सामाजिक विषयों पर भी अच्छा लिख लेती हैं।

यह संसार बदल जावेगा।

प्रलय राहु ने ग्रसा चन्द्रमा,
हुई अमा की निशा पूर्णिमा,
चन्द समय के बाद चन्द्र फिर,
निखिल ज्योत्सना छिटकावेगा।
यह ससार बदल जावेगा॥

महानाश का निठुर प्रहर यदि,
भारत को गारत कर देगा,
जब निर्माता गाधी जी है,
तौ फिर क्यों न उदय आवेगा?
यह ससार बदल जावेगा॥

झंकृत होगी वह स्वर लहरी,

आत्मशक्ति जागृत हो जिससे,

करे भेट नव जीवन ज्योती,

जय सगीत विश्व गावेगा।

यह ससार बदल जावेगा ॥

उसपार

निर्जन और शून्य सा थल हो,

दूर बहुत ही कोलाहल हो,

पर निर्झर के अविरल रव मे,

रहित नही वह प्यारा वन हो,

ऐसा सुन्दर शुभ प्रदेश हो,

हो अपना घर द्वार।

छलिया जग के पार ॥

मलय समीर जहाँ करती हो—

हर्षित, औ विषाद हरती हो

इस मायावी जग की दूषित—

पवन जहाँ ना आ सकती हो,

ऐसी मन्द सुगन्धित प्यारी,

मिलती रहे बयार।

छलिया जग के पार ॥

पर्वत मालाएँ हो फैली,
हो जिनकी मृदुवेल सहेली,
चन्द्र सूर्य की चचल किरणे,
करती हो क्रीडा लुक छिपकर,
सुदृढ प्राकृतिक वही हमारा,
हो अखड ससार।
छलिया जग के पार॥

रवि, शशि, तारे नील गगन मे,
जलप्रपात, तरु पृथ्वीतल मे,
पक्षिगणो का सुललित गुजन,
तरु टहनी का अभिनव बदन,
मन रजन कर पावेगी नित,
विमल प्रेम भडार।
छलिया जग के पार॥

सखी चल छलिया जग के पार।

श्री चन्द्र प्रभा देवी, इन्दौर

आप विख्यात व्यवसायी रावराजा सर सेठ हुकुमचन्द जी की पुत्री है। आपको कविता से प्रेम है और इस ओर उनका अब तक का प्रयास सफल भी हुआ है। आशा है आपकी प्रतिभा भविष्य में अधिकाधिक विकसित होगी।

रण भेरी !

तुम नवजवान हो, ध्यान रहे,
नस नस मे साहस भान रहे,
निज देश धर्म की शान रहे,
उन्नति का श्रेष्ठ वितान रहे,
सगठन शख बज जाने दो,
रण भेरी मुझे बजाने दो !

वीरो ! भारत का मान रहे,
भारत वीरो की खान रहे,
माता बहिनो की लाज रहे,
सद्गुण पूरित सब साज रहे,
पहले की स्मृति हो आने दो,
रण भेरी मुझे बजाने दो !

उज्ज्वल भारत की शान तुम्ही,
अरमान तुम्ही, अभिमान तुम्ही,
दुखिया माता के प्राण तुम्ही,
सर्वस्व तुम्ही, उत्थान तुम्ही,
यह भाव पुन बिखराने दो,
रण भेरी मुझे बजाने दो !

जागरण

(सौ० छन्नो देवी, लहरपुर)

(१)

उठो क्रान्ति का गान हो रहा, निद्रा का यह राग नही
मची रक्त की होली देखो, यह वसन्त का फाग नही

भीष्म ज्वाल के स्फुलिंग उड रहे समझो पद्म पराग नही
यह मरण स्थल युद्ध स्थल है, कुसमित सुरभित बाग नही

देखो उधर व्योम मे प्रलयकर विपत्ति घन सघन छा रहा
शान्ति पूर्ण अब रात्रि नही है अब सकट का समय आ रहा

(२)

देखो देखो ये अडोल धरणीधर, थर थर काँप रहे
देखो रक्तिम देह लिये रवि अस्ताचल को भाग रहे

हो उद्दड प्रचण्ड आलसी मारुत भी फुंकार रही है
उग्र रूप धर धरा अग्नि के, आज उगल अगार रही है

सुनो ! विश्व विद्रोही बन कर विप्लव के है गान गा रहा
महाप्रलय का आवाहन है "अब सकट का समय आ रहा"

नाविक से

(श्री कुसुम कुमारी, सरसावा)

(१)

देखो नाविक ! मेरी नैया,
धीरे धीरे खेना।
मृदु आशाओं का बोझा है,
कहीं भिडा मत देना।
थर थर यह मन काँप रहा है,
कहीं गिरा मत देना।
नैया धीरे धीरे खेना !

(२)

भव समुद्र की अगणित बाधा,
लहरों का तूफान !
यश अपयश के झझा झोंके,
बीच बीच चट्टान !
चट्टानों से बचकर चलना
कहीं न टकरा देना।
नैया धीरे धीरे खेना।

(३)

हाथ तुम्हारे काँप रहे हैं,
इनको जरा थँभाओ,
छूट पडे पतवार न देखो !
पानी परे हटाओ,
मुझे जरा उस पार लगा दो,
तब विराम तुम लेना।
नैया धीरे धीरे खेना !

श्री मैनावती जैन

"बीत गये दिन, उजड चुकी है बस्ती मेरी", यह श्री मैनावती की हृदय के स्वर है—अकृत्रिम, और यथार्थ। वह लिखती है—

"मुझे कवियित्री बनने या कहलाने का अभिमान नहीं, दावा नहीं और इच्छा भी नही; परन्तु अपने इन असहाय पीडा भरे शब्दो को आँसू की लडियो में गूँथने का कुछ रोग सा हो गया है। यह मेरा रोग भी है और मेरे रोग की सर्वोत्तम औषधि भी।"

उनके जीवन में दुःख बज्र की तरह अचानक आ टूटा। १८ फरवरी सन् १९४२ को इलाहाबाद के पास खागा स्टेशन पर जो रेल-दुर्घटना हुई थी, उसमें इनके पति श्री विमल प्रसाद जैन बी० काम०, देहली, स्वर्गवासी हो गये थे। उस समय इनके विवाह को ठीक एक वर्ष हुआ था। उसी दिन से यह मन के गहरे विषाद को आँसुओ की धारा में बहाने का प्रयास कर रही है। इनकी कविता में यद्यपि शब्दो की सुकुमारता और शैली का सौदर्य नहीं है, किन्तु हृदय की तडपन अवश्य है।

श्री मैनावती का जन्म सन् १९२५ में इलाहाबाद में स्वर्गीय ला० शम्भूलाल जैन के घर में हुआ। 'विमल पुष्पाञ्जलि' नाम से आपकी धार्मिक कविताओ का एक सग्रह प्रकाशित हो चुका है।

चरणों में !

अब छोड के जाऊँ कहाँ,
चरणारविन्द तेरे।
आई हूँ द्वार पै मै,
कुछ पास है न मेरे॥
सब भक्त तो चढाते,
जल गन्ध पुष्प अक्षत।

नैवेद्य दीप पावन,
फल धूप कर्म दाहन ॥
मै शीश हूँ नवाती,
उर भक्ति भाव मेरे ।
अब छोड के जाऊँ कहाँ,
चरणारविन्द तेरे ॥
जन लौटते नही है,
निष्फल निराश होकर ।
"मैना" पडी चरण मे,
आँसू की माल लेकर ॥
साथी सगा न कोई,
प्रियतम "विमल" सिधारे ।
अब छोड के जाऊँ कहाँ,
चरणारविन्द तेरे ॥

गीति-हिलोर

श्री गेंदालाल सिंघई—'पुष्प', 'साहित्यभूषण'

श्री गेंदालाल सिंघई, चंदेरी (ग्वालियर) के रहने वाले है और श्री चम्पालाल 'पुरन्दर' के अनुज है। आपने १३ वर्ष की अवस्था से ही कविता लिखना प्रारभ कर दिया था। आपकी भावपूर्ण रचनाएँ पहले जैन-पत्रो में प्रकाशित होती रही, फिर आपने 'नवयुग' के लिए विशेष रूप मे कविताएँ लिखी। अब प्रकाशित नही कराते। इनका एक कविता सग्रह और एक काव्य प्रकाशन की प्रतीक्षा कर रहा है।

आपकी कविता के भाव सुबोध होते है। क्योकि भाषा आडम्बर-हीन होती है। प्रेम-मूलक कविताएँ प्राय सभी सुन्दर है।

कभी कभी मैं गा लेता हूं

कष्ट कही मे आ जाता है,
दिल दुख से घबरा जाता है।
अन्तस्तल की पीडा को मै,
गाकर ही सहला लेता हूँ॥
इस विस्तृत जगती के पट पर,
चित्र खिच रहे नित नूतन नर,
नया न कुछ कह कर दृश्यो को,
शब्दो मे दुहरा देता हूँ॥
कभी कभी आशा जा जा कर,
लौटी साथ निराशा ला कर,
बुरा नही इसको कहता हूँ
दोनो को अपना लेता हूँ॥
कभी कभी मैं गा लेता हूँ॥

बलिदान

जीवन का बलिदान मुझे दो,
सुखमय जीवन दान न दो।

आज न अपना मन बहलाने मृदु वीणा झंकार करे,
इस जीवन का मूल्य मिलेगा आज मृत्यु से प्यार करे।
'भून रहा मानव को मानव' पशुता का संहार करे
शोषण, उत्पीडन के बदले प्रलयंकर हुंकार करे।

'जीवनका उत्सर्ग करे' यह,
प्रण दो मुझ को प्राण न दो।

भक्तों में हो शक्ति स्वयं भगवान भाग कर आते हैं,
भक्त सगुण को निर्गुण करते, निर्गुण सगुण बनाते हैं।
यदि भगवान नृशंस क्रूरता घातकता अपनाते हैं,
तो विद्रोही भक्त आज उनका अस्तित्व मिटाते हैं।

भक्तों ने भगवान बनाये,
भक्त मिले भगवान न दो।

भरा विश्व का भाग्य हमारे मस्तक की इस रोली में,
दीवाने बन कर मिल जाये दीवानों की टोली में।
भीषण नर संहार मचेगा करुण-कंठ की बोली में
क्षण भर में यह जगत जलेगा महानाश की होली में।

सुख से मुझ को मर जाने दो,
जीने का अरमान न दो।

जीवन संगीत

जगत का जीवन ही संगीत
उन्नति इसकी आरोही है
अवनति इसकी अवरोही है—
कष्ट यातना क्लेश क्लान्ति ही है करुणा के गीत ॥
जगत का जीवन ही संगीत ॥
रहता दुख का स्वर वादी है
आशा का स्वर संवादी है
कष्ट कसक ही मींड मसक है दो हृदयों की प्रीत ॥
जगत का जीवन ही संगीत ॥
खाली कभी भरी हो जाती
भरी कभी खाली बन जाती
कोमल तीव्र, तीव्र कोमल हो यही प्रेम की रीति ॥
जगत का जीवन ही संगीत ॥

श्री फूलचन्द्र 'मधुर', सागर

श्री फूलचन्द्र 'मधुर' दि० जैन महिलाश्रम सागर के मत्री श्री चौधरी रामचरण लाल जी के सुपुत्र हैं। आपको अल्पावस्था से ही कविता से रुचि है। यद्यपि आपकी शिक्षा मिडिल तक ही हुई है, और अवस्था भी २४ वर्ष के लगभग है फिर भी आप बडी सरस कविता करते हैं। इनके गीति-काव्यो में हृदय की स्वाभाविक सवेदना होती है और प्राय कविता का धरातल अपार्थिव और उन्नत होता है।

आप राष्ट्र-कर्मी होने के कारण जेल-यात्रा भी कर आये हैं। इसलिए इनके गीतो में युग की आवाज़ गूजती है।

टूटे हुए तारे की कहानी—तारे की ज़ुबानी

था क्या आधार ?
गगन ने मुझको गिराया
भूमि ने मुझको उठाया।
मध्य में मुझको बसाने—कौन था तैयार ?
था चमकता गात मेरा
था निशा पर राज मेरा।
और अगणित मानवो का—था मुझे ही प्यार।

देख मुझको व्यथित मन से
हँस रहे तारे गगन से।
बन्धु मुझ पर हँस रहे हैं—देख कर लाचार।

देख कर मेरा पतन यह
हृदय का मेरे रुदन यह
(कह दिया आलोचकों ने)
जो कहाते विश्व-विजयी—आज उनकी हार।
था क्या आधार ?

गीत

छुप रहा जीवन तिमिर में।
सजनि ! ये क्षण क्षण मिमट कर मिल रहे धूमिल प्रहर में। छुप रहा० ॥

छुप रही लाली क्षितिज में—छुप रहा दिनकर गगन से
और छुपने जा रहे उन्मुक्त खगगण भग्न मन में
जो रहा अब तक यहाँ—सब वह गया इक ही लहर में। छुप० ॥

जब हृदय को गीत भाया—सर्वस्व भी जिस पर लुटाया
और अब तक जिन्दगी में—जो सखे था प्यार पाया
शोक वह कुछ भी नहीं—सब रह गया पिछले प्रहर में। छुप० ॥

वेदना के गीत गाता—विगत स्मृति को सुनाता
बढ रहा हूं शून्य मे मैं—शून्य मे खुद को मिलाता
प्रिय अप्रिय क्या क्या रहा—यह सोचना पथ मे ठहर मे। छुप० ॥

वेदना के साथ मिल कर—यातना के साथ घुल कर
प्राप्त जो कुछ कर सका म—दा क्षणा का प्यार बन कर
सब लुटाता जा रहा हू—आज इस सूनी डगर म।
छुप रहा जीवन तिमिर मे।

मैंने वैभव त्याग दिया

जिसको है जग ने ठुकराया, उसको ही मैंने दुलराया,
जिसको जग की घृणा, उसी को अब तक मैंने प्यार किया है।
तब जीवन पहिचान न पाया, किंचित सुख मे पथ बिसराया,
वैभवहीन आज हो मैंने, जग का कुछ उपकार किया है।
मानव अपना पथ बिसराया, कुछ भूल मे कुछ भरमाये
मैंने जब से जग मे पाया—दुख का ही सम्मान किया है।
हुए स्वप्न वे दिवस हमारे, त्याग सभी सुख साज पियारे,
आज विश्व के निकट खुशी से प्रस्तुत यह आदर्श किया है।
मैंने वैभव त्याग किया है।

आज विवश है मेरा मन भी

पग पग पर मेरे प्रतिबन्धन
है अन्तर में भीषण क्रन्दन
अरे बँधी सीमाएँ उसकी-अल्प जिसे विस्तीर्ण गगन भी। आज विवश० ॥

आह पतन यह कितना अपना
इससे भी कुछ ज्यादा सहना
किन्तु दुखी अन्त का कोई नहीं आज सुनता रोदन भी। आज विवश० ॥

"वे विजयी कहलाने वाले
हम हैं अश्रु बहाने वाले"
आज परस्पर ऊँच नीच का है क्यों जग में समीक्षण भी? आज विवश० ॥

हम भी अब युग को अपनावें
मिटने के अरमान जगावें
खोये अधिकारों को पावें
अपना पथ दर्शक कहता है—"अमर रहा कब मानव तन भी?"
आज विवश है मेरा मन भी।

श्री 'रतन' जैन

कविता के क्षेत्र में उन्नति की ओर शीघ्रता से क़दम बढाने वाले नवयुवको में श्री रतनकुमार जैन का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यद्यपि आपका उपनाम 'रतन' या 'रत्न' नही है, फिर भी आप अपनी कविताओ के साथ यही नाम छपवाते है।

श्री 'रतन' जैन, जर्यासह नगर, जिला सागर के रहने वाले है और इस समय स्याद्वाद महाविद्यालय काशी मे अध्ययन कर रहे है।

यद्यपि आपके गीतो में वेदना और निराशा की स्पष्ट छाप है किन्तु जीवन के निरीक्षण का दृष्टिकोण एकान्तवादी नही है। हमे आशा करनी चाहिये कि वह अपनी 'परिचय' शीर्षक कविता के अनुसार ही अपने कवि-जीवन का ध्येय बनायेंगे --

'मैं कवि हूँ कविता करता हूँ मुर्दो मे जीवन भरता हूँ।'

मुझसे कहती मेरी छाया

साच सम्हल पग धरना मग मे
काँटे-फूल बिछे डग डग मे
जीवन के उत्थान पतन मे उलझ न जाय कही यह काया
मुझसे कहती मेरी छाया
प्रिय वसन्त के नवल राग मे
यौवन सरसिज के पराग मे
भूल न जाना पथिक कही तू अगारो की जलती छाया
मुझसे कहती मेरी छाया
प्रणय कम्प की भीनी सिहरन
मृगनयनी की तीखी चितवन
प्यार भरी इन रातो मे है सदा किलकती छलनी माया
मुझसे कहती मेरी छाया

मेरे अन्तरतम के पट पर

इन्द्रधनुष की नवल तूलिका
सुख दुख की ले मृदुल भूमिका
विस्मृत जीवन के चित्रों को करती रेखांकित है सत्वर
मेरे अन्तरतम के पट पर
शैशव की बालारुण आभा
यौवन की मदमाती छाया
रतनारे इन नयनों में है अश्रुबिन्दु छलकाती मृदुतर
मेरे अन्तरतम के पट पर
पुण्य पाप की गा गाथाएँ
प्यार भरी नूतन आशाएँ
नीरव निर्जन वन्य प्रान्त में इठलाती हैं सरिता-तट पर
मेरे अन्तरतम के पट पर

पूछ रहे क्या मेरा परिचय ?

मैं कवि हूँ कविता करता हूँ,
मुर्दों में जीवन भरता हूँ,
जीवन दीप जला कर अपना, प्राणों का करता हूँ विनिमय,
पूछ रहे क्या मेरा परिचय ?
जग में फहरे यश पताका,
जल, थल, नभ, में घहरे साका,
किन्तु सदा ही भूखा सोता, पेट बाँधकर अपना 'नर्दय,
पूछ रहे क्या मेरा परिचय ?
गा गा मेरे गीत मनोहर,
मुग्ध हुआ जग विस्मृत होकर,
किन्तु यहाँ तो जीवन भर ही, रोने ही रोने का निश्चय,
पूछ रहे क्या मेरा परिचय ?

बतलाओ तो हम भी जाने

क्यों मुसकान भरी है रातें,
सजा सजा दीपों की पातें,
बिखरा देती भूतल पर नित, मुक्त माल के दाने दाने ?

बतलाओ तो हमभी जाने।
उषा की काली अलकों में,
सन्ध्या की नीली पलकों में,
नवल राग चमका कर आली, गाती मनहर कौन तराने ?

बतलाओ तो हम भी जाने।
कृष्ण निशा में क्यों दीवाली ?
क्यों वर्षा में बदली काली ?
क्यों बसन्त पतझड़ के पीछे, ? पंचम के क्या मीठे गाने ?

बतलाओ तो हम भी जाने।

श्री फूल चन्द्र, 'पुष्पेन्दु'

'पुष्पेन्दु' जी लखनऊ के निवासी है। आप ६ भाई है। जो सब के सब न्यूनाधिक रूप मे साहित्यिक और कला-प्रेमी है। 'पुष्पेन्दु' जी मे स्वाभाविक प्रतिभा है। इनकी कविता नितान्त मौलिक और अकृत्रिम होती है। वह अपने हृदय के भावो को व्यक्त कर सकने वाले शब्दो और उनके अनुरूप शैली को सहज भाव मे प्राप्त कर लेते है। उनकी सभी रचनाएँ परिस्थितियो से आलोकित हृदय-सागर के मन्थन का परिणाम है। उनके गीतो में ताजगी और आँसुओ का सजल क्षार है।

जब वह ११ वर्ष के ही थे, तभी उन्होने लखनऊ के 'सफेदा आम' पर मौलिक रचना गढ ली थी जो पाठको के मनोरजन के लिए नीचे दी जाती है:—

लखनोआ सफेदा औ लगडा बनारस का,
दोनो ही ये आम में शिरोमणि कहायो है।
लखनऊ के सहसाह दूध से सिचायो जाय,
ताहि केरि वन्सज सफेदा नाम पायो है।
याही से लडन को बनारस से धायो एक,
बीच ही में टाँग टूटी लँगडा कहायो है।
कहे 'पुष्प इन्दु' वाने यत्न बहुतेरे कीन्हे,
तबहूँ सफेदा की नजाकत न पायो है।

स्मृति-अश्रु

विगत मे जो सो रही थी,
काल-क्रम का डाल आँचल
दूर होता जा रहा था,
दृष्टि मे जो दृश्य प्रति पल

मैं जिसे इतने दिनों पर,
आह ! था अब भूल पाया।
आज धुँधली पड़ चली थी,
जिस विगत की क्षीण छाया ॥

आज कोकिल कूक कर फिर,
कह गई बीती कहानी।
जागरित फिर हो पड़ी,
संस्कार की सत्ता पुरानी ॥

शान्त उर में फिर लगा,
उठने वही भीषण बवन्डर।
अश्रु-कण तुम भी चले
आए पुरानी याद लेकर ॥

अभिलाषा

मैं बना रहूँ जग बना रहे।
तारक मणि मंडित नील गगन।
लख, तारों का झिलमिल नर्तन
मन ही में कह उठता है मन ॥
मेरे ऊपर यह रत्न जड़ित सुन्दर वितान सा बना रहे।
मैं बना रहूँ जग बना रहे।
यह चन्द्र मधुर मुस्कान लिए।
उन्नति क्रम का अभिमान लिए ॥
किरणों का कोष महान लिए।
अमृत मय सुधा बताने को यह सदा सुधा से सना रहे।

मैं बना रहूँ जग बना रहे।
यह सान्ध्य गगन सौन्दर्य प्रखर।
यह अचल हिमाचल शैल शिखर॥
यह सरिताओं की लोल लहर।
इनका रहस्य कुछ जान सकूँ, बस एक यही साधना रहे।
मैं बना रहूँ जग बना रहे।

यह मित्र भला उस पार कहाँ।
यह मात-पिता-परिवार कहाँ॥
यह चिर परिचित संसार कहाँ।
केवल सबको सब पहिचान, बस प्रेम परस्पर घना रहे॥
मैं बना रहूँ जग बना रहे।

देव द्वार पर

आज आया हूँ यहाँ पर विश्व का विश्वास लेकर।
आज आया हूँ यहाँ पर विश्व भर की आश लेकर॥
पाद पद्मों में तुम्हारे सर झुकाता जा रहा हूँ।
गुनगुनाता जा रहा हूँ॥

आपको अपना समझ कर वेदना के द्वार खोले।
सब निवेदन कर चुका मैं, किन्तु तुम कुछ भी न बोले॥
इस तुम्हारी मौनता पर मुस्कराता जा रहा हूँ।
गुनगुनाता जा रहा हूँ॥

एक निर्धन भी अरे करता अतिथि सत्कार कैसा।
विश्वपति यह फिर तुम्हारा है भला व्यवहार कैसा॥
आज इस आश्चर्य में दुख भी भुलाता जा रहा हूँ।
गुनगुनाता जा रहा हूँ॥

भूलता सा जा रहा हूँ वेदना का भार भगवन् ।
भूलता सा जा रहा हूँ नाथ मैं अपना निवेदन ।।
हृदय के आवेश मे, मैं कुछ सुनाता जा रहा हूँ ।
गुनगुनाता जा रहा हूँ ।।

व्यथा

जागे आज व्यथा के भाग ।।
जो कवि मे उत्पन्न हुआ है अब उसको अनुराग ।
जागे आज व्यथा के भाग ।।

हृदय हीन से प्रीति लगाकर उसने था अब तक क्या पाया ।
ज्यों-ज्यों उसे पकडने दौडी त्यों त्यों वह उसमे घबराया ।
अब आनन्द अधिक आएगा मिली आग मे आग ।
जागे आज व्यथा के भाग ।।

मेरे व्याकुल सप्त स्वरो पर, शब्द राशि बनकर वह आई ।
उष्ण उसाँसो मे भी मैंने, शीतल मन्दाकिनी बहाई ।
कल-कल छल-छल ध्वनि ने गाया अपना व्यथित-विहाग ।
जाग आज व्यथा के भाग ।।

कितने मानव तुझे प्राप्त कर इस जग मे बेमौत मरे ।
केवल कवि है जो मर कर भी तुझको जग मे अमर करे ।।
कवि ने आँखो मे पाला है ,तेरा अचल सुहाग ।
जागे आज व्यथा के भाग ।।

श्री गुलजारीलाल, 'कपिल'

आप आगरा कालेज में एम० ए० के विद्यार्थी हैं। पिछले ५ वर्ष से कविता, कहानी, लेख लिख रहे हैं। कविताओं के परिचय स्वरूप वह लिखते हैं —

"जीवन के प्रति मेरा दृष्टिकोण सदैव वेदनामय रहा है। यद्यपि कुछ रूढ़वादी विचारक तथा समालोचक इस दृष्टिकोण को विदेशी तथा आधुनिक कवियों एवं नवयुवकों का फैशन बताते हैं, किन्तु मैं जीवन के प्रति इस दृष्टिकोण ही को वास्तविक रूप में शाश्वत मानता हूँ। क्योंकि मैं समझता हूँ, सुख के क्षण हमारे जीवन में बहुत थोड़े आते हैं और उनका कार्य भी हमारी कामनाओं को विकृत करना ही होता है। किन्तु दुख अथवा वेदना हमारे जीवन के चिर संगी हैं और वे ही ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से हमारी जीवन-धारा में निरन्तर विद्यमान रहते हैं। अतः मैं उन्हीं को अत्यन्त मूल्यवान समझ कर सदैव अपनाता रहा हूँ।"

विश्व का अवसाद हूँ मैं

विश्व ने अब मुझे चाहा
कब मुझे उसने सराहा
सह चुका हूँ दुःख अति क्या और भी सहता रहूँ मैं ? विश्व०

जन्म से ही हूँ अभागा
भावना के साथ जागा
इसलिये रोया बहुत क्या और भी रोता रहूँ मैं ? विश्व०

झुलस अन्तर गया मेरा
शून्यता ने मुझे घेरा
तड़पता औ' भटकना जैसे रहा वह ही रहूँ मैं ? विश्व०

शान्ति मे मैं रह न पाया
जन्म कब सुख मे बिताया
सह चुका जो सह चुका अब किसलिये, क्यो, क्या कहूं मैं ?
विश्व का अवसाद हू मैं ।

रुदन या गान

प्रिय यह रुदन या गान !
प्रकृति का यह क्रम निरन्तर
चल रहा अनजान ।
विश्व मे नव-चेतना औ'
क्रान्ति की उत्पत्ति करता
हर्ष मे उन्मुख हुआ
रवि बढ रहा द्युतिवान ।

किन्तु यह सन्ध्या सुहासिनि
आज क्यो बनकर उदासिनि
ध्वान्त मे निज रिक्त-उर
है भर रही अज्ञान ?

सङ्ग ले निशि-प्रेयसी को
उडुगणो के हार मे पो
शशि भ्रमण करता हुआ
क्या गा रहा सप्रान ?

हाय यह क्या क्यो बिचारी
विरह-कश ऊषा दुखारी
अरुण-नयनो मे बहाती
ओस-अश्रु अजान ?

श्री हीरालाल जैन, 'हीरक'

आप स्याद्वाद महाविद्यालय काशी के विद्यार्थी हैं। छायावादी ढग के गीत लिखने का प्रयास करने पर, भाव दूरूह हो जाते हैं। कविता की ओर आपकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होने के कारण भविष्य में आप अच्छी रचनाएँ करेंगे, ऐसी आशा है।

प्राण ! क्यों मियमाण ऐसे !

साधना मे शून्य पथ मे भ्रान्त और उदास कैसे ?
विगत जीवन म दिया है पूर्ण आलम्बन सहारा।
सुप्त जागे सुन विपञ्ची गान का स्वर स्वान्त प्यारा ॥

क्यो हुए निस्तेज पथ मे म्लान और निराश ऐसे ?
वीर गाथाएँ अभी भी व्यक्त स्वर म गा रही है।
पूर्व का इतिहास सन्मुख कह हृदय अकुला रही है ॥

कह रही क्यो आज जीवन म कलङ्क लगाए ऐसे ?
विश्व का निर्माण तेरे अजय पौरुष पर हुआ है।
नरक मे भी शान्ति रस का पान मदिरा सा हुआ है ॥

क्यो बने विवर्ण-मय फिर, मोह के आमन्त्र ऐसे ?
जग उठो जग नील नभ पर सुकृति से बन शुभ्र तारे।
चमचमाओ जगमगाओ नष्ट कर तम-तोम सारे ॥
गई बेला हाथ मे आना कठिन निश्चिन्त कैसे ?

देखा है

अवनि और अम्बर के ऊपर, नर सहार मचा देखा है !
अपनी अपनी आशाओं पर, जीवन की अभिलाषाओ पर,
इस भगुर वैभव के ऊपर, मायावी दुनिया के ऊपर,
एक समय में असमय मैंने, वज्रपात होते देखा है !
देकर प्राण प्राण को लेने, सजन महीतल निर्जन करने,
अपने पन का वर्जन करने, पर-वसुधा का अर्जन करने,
राजाओं का नगापन भी, वर्तमान युग मे देखा है !
जिसे चाहते हमलेने को, उसे न चाहे हम देने को,
बीच बीच मे फूट डाल कर, बडी बडी "स्पीच" झाड कर,
करते हैं अन्याय हमी ही, विषम न्याय ऐसा देखा है !
हमे लूट फिर भी कहते हैं, आह न मुख स अरे ! निकालो।
विषम यातना सहा न चाहो, विष खा लो जीवन दे डालो,
इसी तरह का वसुधातल पर, शासन हा ! मैंने देखा है !
धन अपहरण हमारा करते, न्याय नीति अवलम्ब न करते,
विश्व हितैषी-पन मे फिर भी लेश वित्त व्यय भी ना करते,
सदा चाहते कोष अमर हो, ऐसा राजापन देखा है !
प्रजा मरे चाहे कुछ भी हो, कभी स्वार्थ मे नही कमी हो,
शासन सत्ता रहे हमारी, नहीं देश मे शान्ति रही हो,
ऐसी कुत्सित अभिलाषाओ पर, शासन-जीवन देखा है !
राजा प्रजा जहाँ दोनों का, नही प्रेम मे वास रहा है,
राजाओ का नही परस्पर, प्रेमपूर्ण व्यवहार रहा है,
वहाँ शान्ति भी कभी न होगी, नियम अचल मैंने देखा है !

सीकर

श्री ईश्वरचन्द्र, बी० ए० एल-एल० बी०

अर्चना

ओ, वीतराग पुनीत !
देव तुमसे ही अलकृत भक्ति का सगीत ।
अमा निशि के गहन-तम को,
भेद ज्योतिर्वान !
रश्मि रूपशियाँ मरम, कोमल
चपल गतिवान !!
लोल लहरों पर लिखे निर्वाण के मृदु गीत ।
ओ, वीतराग पुनीत !
प्रेम सागर के अतल ताल
के मृदुल उपहार !
पर्ण राग विराग के,
ओ भव्य जय जयकार !!
आत्म-परिरम्भक ! तुम्हीं से बधनाकी जीत ।
ओ, वीतराग पुनीत !
दिव्य-ध्वनि ! ओ, दिव्य-दृष्टा !
अमित सुख सन्देश !
दीप्त-दीपक ज्ञान के,
जाज्वल्यमान अशेष !!
भव्य मानव के भविष्यत, वर्तमान, अतीत !
ओ, वीतराग पनीत !!

श्री अनूपचन्द्र, जयपुर

मेरा उर आलोकित करदो

बिन्दु-बिन्दु कर रिक्त हुआ घट,
चिर जीवन मदिरा से भर दो।
समृत का कोमल कठोरतल,
आज स्वर्ण आभा से उज्ज्वल।

मेरे उर के अधकार को,
अपना सुखमारुण सत्वर दो ॥ मेरा० ॥
पलकों के पथ पर चल पुलकित,
स्वय अमलता हुई अवतरित।

मम उर के पकिल शत दल को,
विमल हास, औ अरुण अधर दो ॥ मेरा० ॥
नीलम के चदवे के नीचे,
शत शत रवि के स्वर्ण गलीचे।

बिछा, अकिञ्चनता की चुप्पी मे,
वैभव का चचल स्वर भर दो ॥ मेरा० ॥
मिलन प्रतीक्षा म सज धज कर,
वसुधा श्वासो मे सौरभ भर
(पलक प्रदीप बिछाती पथ मे)

देवि ! प्रतीक्षा की प्यासी को,
मत पावस का चिर निर्झर दो।
दो जीवन का स्पन्दन स्वर दो,
मेरा उर आलोकित कर दो ॥

श्री 'तन्मय'

मैं एकाकी पथ-भ्रष्ट हुआ

कुछ ने चौपथ तक साथ दिया,
कुछ, अर्द्ध मार्ग में हुए विलग।
कुछ थके, रुके, कुछ कहीं थमे,
हो उठे सभी के भारी पग॥

मैं एक निरन्तर किन्तु बढ़ा
था आगे इस टेढ़े पथ पर।
पर हाय! हुआ मुझको भी क्या?
हो रहे चरण मेरे डग मग॥

आगे क्या होगा? गति-अर्थ ही
जब इतना संथक, संकुल हुआ।
मैं एकाकी पथ भ्रष्ट हुआ॥१॥

पथ-भीषणता, दुर्गमता का,
जग आज दिखा मन मुझको भ[illegible]।
चल पड़ा रुकूँगा अब न कहीं
आँधी आए, हो जाय प्रलय॥

पाँवों में काँटे चुभे, लहू
टपके मुझको चिन्ता न आज।
कर जाऊँगा कालालिंगन,
या लौटूँगा ले पूर्ण विजय॥

इतिहास है साक्षी—काँटों में,
जो उलझा वह उत्कृष्ट हुआ।
मैं एकाकी पथ भ्रष्ट हुआ ॥२॥

मैं पहुँच सकूँगा मंजिल तक,
मुझको भय है! मैं हूँ हताश।
पग-पग पर गिरता उठता हूँ,
हो रहा लुप्त रवि, शशि-प्रकाश ॥

फिर पाँव पकड़ कर खींच रहे,
पीछे मेरे सहगामी ही!
आबद्ध विविध बंधन द्वारा,
कर रहे हाय है सर्वनाश ॥

रे, मेरी जीवन गाथा का,
तो बन्द आखिरी पृष्ठ हुआ।
मैं एकाकी पथ भ्रष्ट हुआ ॥३॥

श्री साहित्यरत्न पं० चांदमल, 'शशि' जयपुर

प्रण, दे प्राण निभायेंगे

बार-बार उठ कहती हम को अन्तरतम की मूक पुकार--
"अब हम तुझसे उऋण बनेंगे, दे निज जीवन का उपहार" ॥

आई यह बेला वर्षों में अपनी साध पुरायेंगे।
तेरे हम आदर्श बाल माँ ! प्रण, दे प्राण निभायेंगे ॥

भ्रम-वश अपनी समझ न, तेरा आज भले कर ले अपमान।
पर वह दिन दूर न जब होगा, तुझको प्राप्त जगत-सम्मान ॥

भूले भटके सभी एक मत हो पथ पर आजायेंगे।
गायेंगे जय गीत तुम्हारे, प्रण, दे प्राण निभायेंगे ॥

तेरा और हमारा नाता, जन्म जन्म से बना हुआ।
इस नश्वर तन की नस-नस में, तेरा ही स्वर भरा हुआ ॥

पृथक् न हो सकते तुझसे, सुत तेरे ही कहलायेंगे।
तेरी रक्षा-हित सब मात ! प्रण दे प्राण निभायेंगे ॥

श्री लक्ष्मीचन्द्र, 'सरोज'

निशा भर दीपक जिये जा।

कामना यह आज जग की सुखद दीपक सुख दिये जा
जगत जल जल कर प्रकाशित सुखद जीवन मे जिये जा

भूल जा तू जलन मे दुख साधना हित मे अमर सुख
भावना ले आज प्रति पल प्रकाशित जग कण किये जा

अमर जलना काम तेरा हो न चाहे नाम तेरा
मौन रह रह जग सजग कह अमर सुख जग को दिये जा

ग्रन्थि दीपक स्नेह बाधी भूल वर्षा-मेह-आँधी
आज मेरा साथ जल जल निशा जीवन भर दिये जा

अभी दीपक स्नेह बाती भूल जा तू ! मृत्यु आती
मै जलाता आज जग ह प्रकाशित मुझको किये जा

स्नेह सुखकर दीप बाकी बनो मेर दीप साकी
गहन जीवन की निशा मे सुमय प्याला भर दिये जा

नही अब तक शुभ सवेरा यही बस तू ! जमा डेरा
गुरु माँगता वरदान जग सुखद दीपक सुख दिये जा

तुम चमकते बनो मोती दीन दुनियाँ नित्य रोती
और रह रह धैर्य खोती कुछ दिलासा तो दिये जा

श्री सागर चन्द, 'मोला'

जग-दर्शन

वेदना की ओट मे सघर्ष का एक सार देखा--
चेतना कब तक रही है ?
और भी कब तक रहेगी ?
जिन्दगी अवसाद हो कर,
दुख अभी कितना सहेगी ?
आज क्षण क्षण पल पलक मे एक हाहाकार देखा---
आज सदियो की पुरानी,
अनल लय मैंने सुनी है,
आह की निस्सीम सासे,
एक ऊँगली पर गिनी है,
हाँ ! हृदय के बीच मन एक चुभता तीर देखा---
शान्ति तो मुर्दा जगत की,
भ्रान्ति की बेबस पिपासा,
थी कभी मेरे हृदय म,
स्वप्न की ये क्षणिक आशा,
अब सुकोमल फूल का काटो भरा लाचार देखा---
जिस हृदय मे था अँधेरा,
हो न पाता था सवेरा
कायरो का एक घेरा
पाप का दुर्दिन बसेरा
अब उसी मे क्रान्ति का फूला फला ससार देखा---

श्री बाबू लाल, सागर

पथिक के प्रति

निराले किस पथ पर अनजान
अनोखे ले कर के अरमान ।
चला क्या जीवन पथ की ओर ,
लिये नव व्यंगमयी मुस्कान

सुना है उर अंतर के राग ,
मगर तू रहना सदा विराग ,
उठाते मादक भरी हिलोर ।
सहन कर मोहक तीखे बान

मचा है युग व्यापी संहार
उलटते नभ चुंबी प्रासाद
छूटती चिनगारी विकराल
विमुख मत होना अय अजान

पथिक मत होना कभी हताश
देख कर जुल्मों की बौछार।
जगाना पावन ज्योति नितान्त,
ध्येय पर हो कर के कुर्बान

कुचलना कंटक कलिश कठोर
धारना मणिमय मुक्ता हार।
सरल कर जटिल समस्या जाल,
गुंजाना गुण गण गरिमा गान

क्रान्ति धर गूंजा तीव्र हुंकार,
पतन में ला दे शान्ति अपार।
अवनि पर बिखरे कीर्ति पराग,
रचा दे नूतन सृष्टि विधान

श्री कपूरचन्द नरपत्येला 'कंज'

मेरी बान

मेरी सदा रहे यह बान।
धर्म-जाति हित मरना सीखूं।
पर सेवा हित जीना सीखूं॥
रखूं देश की शान।
मेरी सदा रहे यह बान॥१॥

बिछड़ों को मैं गले लगाऊँ।
पिछड़ों को मैं आगे लाऊँ॥
दिल में आनंद मान।
मेरी सदा रहे यह बान॥२॥

भूखों को मैं तृप्त कराऊँ।
प्यासों की मैं प्यास बुझाऊं॥
दऊं दया का दान।
मेरी सदा रहे यह बान॥३॥

दुखियों का दुख हरना सीखूं।
दीनों को धन देना सीखूं॥
रखूं वंश का मान।
मेरी सदा रहे यह बान॥४॥

कुरीतियों को दूर भगाऊँ।
शिक्षा का विस्तार कराऊँ॥
मेटूं सब अज्ञान।
मेरी सदा रहे यह बान॥५॥

श्री केशरी मल आचार्य, लश्कर

तेजो निधान गांधी महान् ।

तेजो निधान गाँधी महान् ।
गौरव गिरि के शेखर स्वरूप
बल प्रकट आत्म के मूर्त्ति रूप
हो क्षीणकाय गरिमा प्रधान
चिर भाषित त्याग विभूतिमान ।
तेजो निधान गाँधी महान् ।

हो जग भूषण आराधक भी
आराध्य तुम्हारा ज्ञान ध्यान
है विश्व मानता देवतुल्य
चालीस कोटि तन एक प्राण ।
तेजो निधान गाँधी महान् ।

माता की अचल मे आये
पा दिव्य रूप सत्व प्रधान
सेवा से सिचित कर दीने
लघु जीवन भी जग के महान् ।
तेजो निधान गाँधी महान् ।

निष्किंचन हो कर भी तुमने,
जग से ममता नहिं छोड़ी है।
करते रहते हो प्रति क्षण में,
भारत माता का एक ध्यान।
तेजो निधान गाँधी महान्!

ध्रुव सत्य अहिंसा के पट में,
है परि विशुद्ध जिनकी काया।
परिपूर्ण भरा जिसके भीतर—
कंचन मय निर्मल सुधा पान।
तेजो निधान गाँधी महान्!

वह सुधा स्रोत स्रावित हो कर,
अनशन प्रवाह में वाहित हो।
उद्गम से अंतिम संगम तक,
की आज पारणा का पयान (निदान)!
तेजो निधान गाँधी महान्!

श्री कौशलाधीश जैन 'कौशलेश'

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

भाषा के भडार मे, भूषण भरे अनेक ।
बिन्दु भारती भाल को, भारतेन्दु भी एक ॥१॥

महि मे यो महिमा रही, कविनु माँहि हरिचन्द ।
तारागन बिच गगन मे, गन्यो गयो जिमि चन्द ॥२॥

तेरी कविता कोमुदी, कवि मन कुमुद प्रमोद ।
रसिक चकोरन चित चढ्यो, चितवत सहित विनोद ॥३॥

सरस रहे सरसिज सरसि, साहित[1] सरहि सुजान ।
मन मधुकर मानो भया, कविता-मधु कर पान ॥४॥

[1] साहित्य

ऋतुराज

कुंज लसै ललितान लतान मनो हरितान वितान सुछाजे ।
फूलन के चहुँ ओरन तोरन शब्द विहगन बाज न बाजै ।
है रवलीन अलीनन की अवली ज्यो भली बिरदावलि गाज ।
राज के साज सुसाज कै आजु बनै ऋतुराज समाज विराज ।

श्री मुनि विद्या विजय

दीप-माला

नीति रीति प्रीति तूर्ण नीद मे गई।
झूंठ लूट फूट राज्य मे समा गई॥

ईति भीति दूर अन्य तत्रता गई।
धन्य हिंद भूमि दीपमाल आ गई॥

गेह द्वार आलिये भरी लगा गई।
रम्य दीप ज्योति को लखी मुहा गई॥

वर्द्धमान धीर वीर याद आ गई।
वदना उन्हे करूँ प्रहर्ष मै लई॥

श्री चन्द्रशेखर शास्त्री, 'आचार्य'

भक्ति-भावना

प्रभू के चरणों में हम सर झुकाये बैठे हैं।
उन्हीं में लौ है लगी लौ लगाय बैठे हैं॥

सुनें न सुनें यह तो उनकी मर्जी है।
हमें तो धुन है लगी, धुन लगाये बैठे हैं॥

हमारे ऐबो हुनर सब हैं उनकी नजरों में।
दिखाई दें न दें नजर जमाये बैठे हैं॥

सुनेंगे कैसे नहीं यह भी कही खूब कही।
जब कि यों तन को लगी तन रमाये बैठे हैं॥

जो देते ज्योति हैं सब सूर्य, चन्द्र, तारों को।
उन्हीं से आश है आशा लगाये बैठे हैं॥

१४

श्री सूरज भान, 'प्रेम'

किनारा हो गया

नाम यो पस्ती मे वालातर हमारा हो गया ।
जिस तरह पानी कुएँ की तह मे खारा हो गया ।।
कौम की बिगडी हुई हालत का नकशा देखकर ।
जख्म दिल मे पड गये दिल पारा पारा हो गया ।।
रजोगम फुकन के शोलों से जिगर भी जल चुका ।
हो गये बर्बाद गर्दिश का सितारा हो गया ।।
दिल मे अब इस तरक्की से हो गई कुछ कुछ बहार ।
वर गए अरमा ये पौदा गुल हजारा होगया ।।
'प्रेम' इस बहरे जहाँ मे कौम की किश्ती पडी ।
जा लगी जिस जगह पर उस जाँ किनारा हो गया ।।

विचार लो ?

आपस के द्वेष मे गौरव विलीन हुआ ,
अपनी सभ्यता और शर्म को विचार लो ।
वीर बन जाओ तन जाओ अधिकार पर ,
अपने पुनीत विश्व कर्म को विचार लो ।
धारो क्यो न पौरुष प्रचड शक्ति साहस का ,
अपनी महानता के मर्म को विचार लो ।
फूट को हटाओ और प्रेम करो आपस मे ,
उन्नति का मार्ग ध्रुव कर्म को विचार लो ।

श्री गोविन्ददास, काठिया

वसन्त आगमन

सरिता समुद्र प्रतिभा सयुक्त,
नलनी निकुज कलहस युक्त,
उपवन के मनहर कुजो मे,
है कलरव ध्वनि का चमत्कार।

कमनीय वन केशव समीर,
विरही विटपो को कर अधीर,
रमणीय रसाल बोर पर भी,
कोमल की कुहु-कुहु है पुकार।

कलियाँ, कदब, कदली, कमोद,
चपक, गुलाब, जुहि, किशु, कुन्द,
भर लाई विविध विरग रग,
श्रुति रम्य मधुप गण की झकार।

पपीहा का पिहु पिहु नाद कही,
मुरली का मधुर सुराग कही,
सुमनो की मधुर परागा से,
'मधु' बन मे तेरी छवि अपार।

मनमोहन प्रेम वसत सभी
भर लाते हृदय उमग नवी,
पर आज रक्त धारे लखकर,
कर रहे रसिक जन चीत्कार।

श्री युगल किशोर, 'युगल'

मानव

शान्त हृदय सा बैठा मानव
हिय मे आशा जाल छिपाए
बेसुध दीवाना मतवाला
अपने रंग का साज सजाये

स्वप्नो की रुनझुन मे उसके
आशा-सागर उमडा सारा
आशाओ की धुन ही धुन मे
करने केलि लगा बेचारा

तारक-आवलि लुप्त हुई जब
विहसी सुन्दर ऊषा लाली
छलका भानु प्रभाकर विकसित
करने मानव आशा लाली

अब सोचा मानव ने मेरा
आशा फूल खिलेगा सारा
सहसा वज्राघात हुआ जब
खडित हो उसका हिय हारा

क्योकर जाने वक्र विधि गति
आशा का मुरझाया मानव
देख रहा नश्वर जीवन को
आशा का ठुकराया मानव

श्री अभय कुमार, 'कुमार'

जागृति-गीत

हम जागे और जगाये !

उषा हुई है तारे भागे, हम पीछे रह पाये।
ग्लानि से सर धुन धुन कर क्यो, हम रोते रह जाये ॥

हम जागे और जगाये !

नीड नीड मे प्रतिभा मानव, तेरी बढनी पाये।
जहाँ तिमिर आलोक वहाँ है, फिर भी रोते जाये ॥

हम जागे और जगाये !

प्राची की वह लाली सुन्दर, काली रेखा उसमे।
इगित करती दीख रही है आओ चले बढे जाये ॥

हम जागे और जगाये !

हिंदु मुस्लिम सिक्ख ईसाइ, सबको अन्त मिलाये।
गिरजा, मस्जिद, गुरु मदिर का जाकर भेद मिटाये ॥

हम जागे और जगाये !

देश धर्म की राह खोज कर आगे बढते जाये।
आजादी का नाद लगाकर छाती ताने जाये ॥

श्री निहालचन्द्र, 'अभय'

ओ गाने वाले गाये जा

ओ गाने वाले गाये जा !
मात्र भूमि की बलिवेदी पर अपना रक्त चढाये जा।

सरिता मे वह तूफान उठे,
चाहे लहरो से लहर भिडे,
वही अँधेरी आँधी आये,
पर तेरा वह ही राग छिडे !

धमनी मे जोश उमड आये,
हो नाडी की भी गति आगे,
यह जोशपूर्ण विद्युत तरग,
कण कण मे अग्नि लगा भागे

प्रति मन मे भीड उठे भारी,
रे ! ऐसा राग सुनाये जा,
सुक्ष्म प्रलय की चिन गारी,
कुछ सिलग चुकी सिलगाये जा।